'ज्ञानपीठ'-लोकोदय-ग्रन्थमाला–हिन्दी-ग्रन्थाङ्क १२

गहरे पानी पैठ

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

भारतीय ज्ञानपीठ

गहरे पानी पैठ

* गुरुजनों के चरणों में बैठकर जो सुना.
* इतिहास और धर्मग्रन्थों में जो पढ़ा.
* और हिये की आँखों से जो देखा.

अयोध्याप्रसाद गोयलीय

स्नेहमयी भाभी,

स्वप्नमें भी किसीको पीड़ा नहीं पहुँचाई, फिर भी
आपदाओंके पहाड़ तुम पर टूट पड़े,
इसे भाग्यकी विशेष अनुकम्पा ही
समझना चाहिए; अन्यथा–

"किसको होती हैं अता इस शानकी बरबादियाँ"

ये दुःख हम सबकी जागीर हैं भाभी,

तुम्हें किस मुँहसे अपनी यह कृति भेंट करूँ–

"मेरे आँसू सही अनमोल मोती।
तुम्हारे हारके क़ाबिल कहाँ है"?

*

विषय-सूची

बड़े जनोंके आशीर्वादसे

धर्म-ग्रन्थोंसे

इतिहाससे

गहरे पानी पैठ

हियेकी आँखोंसे

*

एक डुबकी

जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ ।
मैं बौरी ढूँढ़न गई, रही किनारे बैठ ।।

महात्मा कबीरका यह दोहा बहुत प्रसिद्ध है । अर्थ भी सीधा है—विद्यार्थियोंको केवल यह बताना पड़ता है कि 'बौरी' का अर्थ 'बावरी' या पगली है । इसके बाद विद्यार्थी बड़ी सरलतासे अर्थ कर देता है:—

"जिसने खोजा, उसने गहरे पानीमें उतर कर ही पाया । मैं ऐसी पागल कि ढूँढ़नेको गई तो किनारेपर बैठ कर ही रह गई ।"

इस तरह उक्त दोहेका अर्थ तो शब्दोंके किनारेपर बैठकर झलक आता है, पर भाव समझनेके लिए इस ज्ञान-वापीमें गहरे उतरना पड़ता है । कबीरकी सारी जीवन-व्यापी साधनाका तत्त्व इस दोहेमें निहित है । कबीर, तत्त्वके जिस स्पष्ट दर्शन और गूढ़ बातको सादगीसे समझा देनेके लिए विख्यात हैं, उसका उदाहरण भी इस दोहेमें मिलता है । कबीरका 'कवि' भी अपनी समस्त भावुकताके साथ दोहेके भावमें व्याप्त है । कबीरकी प्रणयाकुल आत्मा अपने प्रियतम, अपने भगवान्‌की खोज-में निकली तो दुनिया भरमें भटक आई—घाट-घाटपर झाँक आई । पर प्रियतमकी प्राप्ति नहीं हुई । भगवान् तो घटके अन्दर व्याप्त हैं, हृदयकी इस वापीमें बिना उतरे, बिना चूड़ान्त डूबे वह कहाँ मिलेंगे ? भगवान् तो शेषनागकी शय्यापर क्षीरसागरमें शयन करते हैं न ? हाय, मैं कैसी बावली हूँ जो ऊपर ही ऊपर देखती रही, किनारे ही किनारे बैठी रही ।

तात्पर्य यह, कि जितना सोचते जाइये, गहरे उतरते जाइये, उतना ही अर्थ और मर्म उजागर होता चला जायेगा । धर्म, कर्म, अध्ययन, भोग और योग सबकी सफलताकी कुंजी और आदेश-वाक्य एक ही है—**"गहरे पानी पैठ ।"**

जब महात्मा कबीरने उक्त दोहेमें दूसरा पद 'गहरे पानी पैठ' डाला

था तो उन्हें रहस्यवादी होते हुए भी यह क्या पता था कि प्रायः ४०० वर्ष बाद गोयलीय नामका एक लेखक उनकी साधना और सिद्धि-भूमि काशीसे ऐसी पुस्तक प्रकाशित करेगा, जो उक्त पदके अमर तथ्यको पुस्तकका शीर्षक बनाकर प्रचारित करेगा। भारतीय ज्ञानपीठके मन्त्री श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीयने कबीरके इस सूत्रको जीवनका सूत्रधार बनाया है, जो उनके जीवन और प्रयासको सार्थक बनाता है। उनकी एक अत्यन्त सफल कृति 'शेर-ओ-शायरी' के दो संस्करण हम ज्ञानपीठसे प्रकाशित कर चुके हैं। जहाँ 'शेर-ओ-शायरी' में गोयलीयजीने विशाल उर्दू-साहित्यके सागरमें गहरे पैठ कर गौहर निकाले थे, वहाँ 'गहरे पानी पैठ' में अनादि अनन्त जीवनकी सागर-सरिताओंमें डूबकर और ग्रंथोंको मथकर उन्होंने कुछ रत्न निकाले हैं। इसमें मन्थनके रत्न भी हैं, और फेन भी हैं। फेन न होते तो रत्नोंकी चमक और उनका निखार उतना न उभर पाता।

'गहरे पानी पैठ' में कुल मिलाकर ११८ कहानियाँ, किंवदन्तियाँ, संस्मरण और आख्यान, चुटकले हैं। यह सब तीन खंडोंमें विभक्त हैं—

१. गुरुजनोंके चरणोंमें बैठकर जो सुना—(५५ शीर्षक)

२. इतिहास और धर्मग्रन्थोंमें जो पढ़ा (४७ शीर्षक)

३. हियेकी आँखोंसे जो देखा (१६ शीर्षक)

इतिहास और धर्मग्रंथोंसे ली गई कथाएँ नीति और शिक्षाकी दृष्टिसे उपादेय हैं, पर नीतिके साथ-साथ लेखककी कारीगरी जिन अंशोंमें चमत्कृत होती है, वह है 'बड़े जनोंके आशीर्वादसे' के अन्तर्गत दी हुई दन्तकथाएँ और 'हियेकी आँखोंसे' देखे गए संस्मरण। दन्तकथाएँ हों, चाहे संस्मरण, सबके मूलमें होती हैं जीवनकी कुछ ऐसी घटनाएँ जो युग-युगके अनुभवको और जीवनकी चित्र-विचित्र परिस्थितियोंको साररूपमें रख देती हैं और जिन्हें भूलना कठिन होता है। इन घटनाओंके चित्रणका जहाँ एक उद्देश्य मनोरंजन है, वहाँ जीवन-कौशलकी शिक्षा और नीतिका प्रसार भी है।

जातक, हितोपदेश, पंचतंत्र और Aesop's fables से लेकर 'अलिफ़ लैला' तक इस प्रकारकी सभी पुस्तकें प्रायः मनोरंजन और नीति-शिक्षा दोनों उद्देश्योंको साधती हैं। प्रस्तुत संग्रहमें दोनों उद्देश्योंका ध्यान रखा गया है। जहाँ दोनोंका संतुलन है, वहीं आख्यान मन और हृदयको पूरी तरहसे प्रभावित करता है।

इस प्रकारके आख्यानों और लोक-प्रचलित कथाओंमें कथा-भाग तो प्रायः विदित और पुराना ही रहता है, पर लेखक अपनी शैली, भाषा और वर्णनके चमत्कारसे उनमें नया आकर्षण उत्पन्न करता है। जिस प्रकार आषाढ़के प्रथम दिवसका मेघ सब किसीको पुलकित करता है, पर उस श्यामल आर्द्रताको व्यक्त करनेके लिए सभी कालिदास नही बन पाते। इसी तरह प्रचलित कथाओंको जाननेवाला प्रत्येक व्यक्ति न हितोप-देश' का विष्णु शर्मा बन सकता है न fables का ईसप। गोयलीयजी की साहित्यिकता ही नहीं, उनके व्यक्तित्वकी विशेषता भी उनकी आक-र्षक वर्णनशैली और टकसाली, बामुहावरा भाषामें है।

जिन लोककथाओंको आप पहले सुन चुके हैं, उन्हें आप इस संग्रहमें भी देखेंगे तो पायेंगे कि प्रायः प्रत्येक कहानीको सजीव बनानेका प्रयत्न किया गया है और पात्रोंके सहज वातावरणके अनुसार स्वाभाविक भाषा-का प्रयोग किया गया है। जहाँ भी संभव हुआ है, कहानीके निर्वैयक्तिक आकारको नाम और रूपके उपयुक्त रंगोंसे भरा गया है। यदि एक कुत्तेको मथुरासे दिल्ली जाना है तो रास्तेमें चौमा, छटीकरा, छातई, कोसी, होडल, पलवल, बल्लभगढ़, फ़रीदाबाद, निज़ामुद्दीन और ओखला के बिरादरी-भाइयोंसे उसकी मुलाक़ात और आवभगतका उल्लेख किया गया है ताकि यात्राका भूगोल कहानीकी वास्तविकता और प्रभावको बढ़ा सके।

'मौलवीकी दाढ़ी' का क़िस्सा घटनाकी वजहसे ही दिलचस्प नहीं है, उसमें ज़बानकी मिठास और मुहावरोंकी रवानीके कारण मुंशी प्रेमचन्द की शैलीका आनन्द आता है:—

"खुदाके वास्ते मुझे भी एक बाल अता फर्माइये, ताकि बतौर तवर्रक़ अपनी जानसे भी ज़्यादा अजीज रख सकूं और मनकी मुरादें पूरी कर सकूं"–

"मुल्लाजीने तारीफ़ सुनी तो बाँछे खिल गई। आव देखा न ताव, चट एक बाल नोंचकर मौलवी लतीफ़को मरहम्मत फरमा दिया। बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे...सब एकबारगी टूट पड़े। और इस न्यामतसे कोई महरूम न रह जाये, इसी आपाधापीमें मुल्लाजी की दाढ़ी ठूँठ हो गई।"

'बुढ़िया पुराण' में घटना नगण्य है, मगर मियाँ-बीबीकी बातचीतका इतना पुरलुत्फ तूमार बाँधा है कि अज़ीमबेग़ चग़ताईकी याद आ जाती है।

इस लिहाज़से 'उचक्का' भी कम मज़ेदार नहीं। दिल्लीकी फूलवालों की सैरमें "यह हज़रत भी एड़ीसे चोटी तक ऐनफैन बने हुए थे। पाँवमें १६-१७ रु० का सलेमशाही जूता, ५ पीके लट्ठेका चूड़ीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नटदार तनज़ेबका अँगरखा और पट्ठेदार बालोंपर दिल्लीकी बँधी हुई गोलेदार पगड़ी। आँखोंमें सुरमा लगाये, मुँहमें पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिये दो क़दममें मुसाफिरके पीछे हो लिये।"

'रँगा स्यार' में वर्णनका दूसरा ही रंग नजर आता है:—

"सूर्यके संध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें व्यस्त थी। जुगनू सरोंपर हण्डे उठाये इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाये थे कि क़ुमरीने सरुके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाख़े गुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और बैसाखनन्दन अपने मँजे हुए कण्ठसे श्यामकल्याण अलापकर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी

उलूकखां वल्द बूमखां अपना ख़ुरासानी और श्रीमती चमगीदड़-किशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समां बांध रहे थे।"

पहले खंडकी लोकप्रचलित कथाओं और किवदन्तियोंमें प्रायः देहलीकी बोलचाल और सभ्यताका परिचय मिलता है। कहानियोंका परिधान उसी क्षेत्रका है। दिल्लीके पास हैं गुड़गाँव, रोहतक, नारनौल और दूसरे देहाती ज़िले, जहाँके जाटोंकी अक्खड़ सरलता अनेक परिहास-पूर्ण किंवदन्तियोंका प्राण है। 'जाटकी कृतज्ञता' किस सरलतासे प्रगट हुई है:—

"अरे साव, तेरा चराग़अली नाम किस मूरखने रखा है? तू तो मसालअली है।"

'ज़िद,' 'नीलका भैंसा' और 'टिकिट बाबूका फूफा' जट-विद्या और जट-बुद्धिके मनोरंजक उदाहरण हैं।

इन कहानियोंके हास-परिहास और नीति-ज्ञानके पीछे जो जीवनकी झाँकियाँ हैं; लेखकने उन्हें अपने हृदयके शीशेमें उतारा है—वह पात्रोंके साथ हमजोली बनकर खेला है, हँसा है और रोया है—या तल्लीनतासे उनका चित्रण किया है। पुस्तकका तीसरा खंड इस दृष्टिसे बहुत महत्त्व-पूर्ण है, क्योंकि मानवताके अनेक सजीव चित्र उसमें अंकित किये गये हैं। देहलीके एक धनी सर्राफ़के निर्धन सम्बन्धी, जिन्होंने अपनी इज़्ज़त बचानेके लिए गाँठकी गिन्नी सर्राफ़की गिन्नीके ढेरमें मिला दी थी; साधु-स्वभाव, निरक्षर बिहारीलाल जो जीवनके विषको इसलिए हँस-हँसकर पीता रहा कि दूसरोंको सदा आदर और प्रेमका अमृत पिला सके; दो भाई जो एक दूसरेकी रक्षाके लिए फाँसीके तख़्तेको चूमनेको तैय्यार हो गये; सुन्दर नामकी वह बुढ़िया हलालख़ोरी जिसने लेखकके जेलसे छूटनेपर दामन फैलाकर दुआ दी और जिसने गद्गद होकर कहा—"मुबारक आज का दिन जो अपने जुध्याके हाथसे मुझे यह लेहना नसीब हुआ", और वह मुंशी ऊधमसिंह, जिन्होंने २०० रु० की असह्य रकमका "चुपचाप घाटा इसलिए उठा लिया कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कहीं कुछ

अत्याचार न हो जाये"--यह सब ऐसे चित्र हैं, जिन्हें पढ़कर दिल भर आता है और मानवताका इन मूक, ग़रीब, स्वाभिमानी प्रतिनिधियोंके प्रति मस्तक आदरसे झुक जाता है। गोयलीयजी इन सफल रेखाचित्रोंकी कलाकारिता-के लिए बधाईके पात्र हैं। काश, वह ऐसे रेखाचित्र हिन्दी संसारको लगा-तार देते रहें--जीवनका प्रवाह अनन्त और पारावार असीम है। गोयलीय-जी जैसे साधक ही डुबकी लगाकर नयेसे नये आबदार मोती निकाल सकते हैं। भारतीय ज्ञानपीठ लोकोदयकारी साहित्यकी अभिवृद्धिके लिए इस प्रकारके प्रकाशन प्राप्त करनेके लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा।

डालमियानगर
७ अप्रैल १९५१

लक्ष्मीचन्द्र जैन,
सम्पादक
लोकोदय ग्रन्थमाला

बड़े जनोंके आशीर्वादसे

जीवनकी सार्थकता

एक अत्तारकी दुकानमें गुलाबके फूल घोटे जा रहे थे। किसी सहृदय ने पूछा--"आप लोग उद्यानमें फले-फूले, फिर आपने ऐसा कौन-सा अपराध किया, जिसके कारण आपको ऐसी असह्य वेदना उठानी पड़ रही है ?"

कुछ फूलोंने उत्तर दिया--"शुभेच्छु, हमारा सबसे बड़ा अपराध यही है कि हम एकदम हँस पड़े, दुनियासे हमारा यह हँसना न देखा गया। वह दुखियोंको देखकर समवेदना प्रकट करती है, दयाका भाव रखती है। परन्तु सुखियोंको देख ईर्ष्या करती है, उन्हें मिटानेको तत्पर रहती है। यही दुनियाका स्वभाव है।"

बाक़ी फूलोंने उत्तर दिया--"किसीके लिये मर मिटना, यही तो जीवनकी सार्थकता है।"

फूल पिस रहे थे, पर परोपकारकी महक उनमेंसे जीवित हो रही थी। सहृदय मनुष्य चुपचाप ईर्ष्यालु और स्वार्थी संसारकी ओर देख रहा था।

दिलमें खोट

एक मार्ग चलती हुई बुढ़िया जब काफ़ी थक चुकी तो पाससे जाते हुए एक घुड़सवारसे दीनतापूर्वक बोली—

"भैया, मेरी यह गठरी अपने घोड़ेपर रख ले और जो उस चौराहे पर प्याऊ मिले, वहाँ दे देना। तेरा बेटा जीता रहे, मैं बहुत थक गई हूँ, मुझसे अब यह उठाई नही जाती।"

घुड़सवार ऐंठकर बोला—"हम क्या तेरे बाबाके नौकर हैं, जो तेरा सामान लादते फिरें ?" और यह कहकर वह घोड़ेको ले आगे बढ़ गया। बुढ़िया बिचारी धीरे-धीरे चलने लगी। आगे बढ़कर घुड़सवारको ध्यान आया कि गठरी छोड़कर बड़ी ग़लती की। गठरी उस बुढ़ियासे लेकर प्याऊवालेको न दे यदि मै आगे चलता बनता, तो कौन क्या कर सकता था ? यह ध्यान आते ही वह घोड़ा दौड़ाकर फिर बुढ़ियाके पास आया और बड़े मधुर वचनोंमें बोला—

"ला बुढ़िया माई, तेरी यह गठरी ले चलूँ, मेरा इसमें क्या बिगड़ता है, प्याऊपर देता जाऊँगा।"

बुढ़िया बोली—"नहीं बेटा, वह बात तो गई, जो तेरे दिलमें कह गया है वह मेरे कानमें कह गया है। जा अपना रास्ता नाप ! मै तो धीरे-धीरे पहुँच ही जाऊँगी।"

घुड़सवार मनोरथ पूरा न होता देख अपना-सा मुँह लेकर चलता बना।

क्या सोचें ?

एक ध्यानाभ्यासी शिष्य ध्यान-मग्न थे कि सीकारेकी-सी आवाज़ करते हुए ध्यानसे विचलित हो गये। पास ही गुरुदेव बैठे थे, पूछा—"वत्स ! क्या हुआ ?"

शिष्यने कहा—"गुरुदेव ! आज ध्यानमें दाल-बाटी बनानेका उपक्रम किया था। आपके चरणकमलोके प्रतापसे ध्यान ऐसा अच्छा जमा कि यह ध्यान ही न रहा कि यह सब मनकी कल्पनामात्र है। मैं अपने ध्यानमें मानो सचमुच ही दाल-बाटी बना रहा था कि मिर्चें कुछ तेज हो गई और खाते ही सीकारा जो भरा तो ध्यान भंग हो गया। ऐसा उत्तम ध्यान आजतक कभी न जमा था, गुरुदेव ! मुझे वरदान दें कि मै इससे भी कहीं अधिक ध्यान-मग्न हो सकूँ।"

गुरुदेव मुस्कराकर बोले—"वत्स ! प्रथम तो ध्यानमें—परमात्मा, मोक्ष, सम्यक्त्व, आत्म-हितका चितन करना चाहिए था, जिससे अपना वास्तवमें कल्याण होता, ध्यानका मुख्य उद्देश्य प्राप्त होता और यदि पूर्व-संचित संस्कारोंके कारण सांसारिक मोह-मायाका लोभ संवरण नही हो पाया है तो ध्यानमें खीर, हलुवा, लड्डू, पेड़ा आदि बनाये होते, जिससे इस वेदनाके बजाय कुछ तो स्वाद प्राप्त हुआ होता। वत्स ! स्मरण रक्खो, हमारा जीवन, हमारा मस्तिष्क सब सीमित है। जीवनमें और मस्तिष्कमें ऐसे उत्तम पदार्थोंका संचय करो जो अपने लिये ज्ञान-वर्द्धक एवं लाभप्रद हों। व्यर्थकी वस्तुओंका संग्रह न करो, ताकि फिर हितकारी चीज़ोंके लिये स्थान ही न रहे।"

राणा प्रतापका भाट

जब वीर-केसरी राणा प्रताप जंगलों और पर्वत-कन्दराओंमें भटकते फिरते थे तब उनका एक भाट पेटकी ज्वालासे तंग आकर शहंशाह अकबरके दरबारमें पहुँचा और सिरकी पगड़ी बगलमें छुपाकर फ़र्शी सलाम झुका लाया। अकबरने भाटकी यह उद्दंडता देखी तो तमतमा उठा और रोष-भरे स्वरमें बोला--

"पगड़ी उतारकर मुजरा देना, जानता है कितना बड़ा अपराध है ?"

भाट अत्यन्त दीनता-पूर्वक बोला--"अन्नदाता ! जानता तो सब कुछ हूँ; मगर क्या करूँ, मजबूर हूँ। यह पगड़ी हिन्दूकुल-भूषण राणा प्रतापकी दी हुई है। जब वे आपके सामने न झुके, तब उनकी दी हुई यह पगड़ी कैसे झुका सकता था ? मेरा क्या है, मैं ठहरा पेटका कुत्ता, जहाँ भी पेट भरनेकी आशा देखी, वहीं मान-अपमानकी चिन्ता न करके पहुँच गया। मगर जहाँ-पनाह.........."

अकबरने सोचा--वह प्रताप कितना महान् है, जिसके भाटतक शत्रु-के शरणागत होनेपर भी उसके स्वाभिमान और मर्यादाको अक्षुण्ण रखते है !

शत्रुपर विजय

किसी पुस्तकमें पढ़ा था, कि अमुक देशकी जेलमें एक क़ैदी, जेलरके प्रति विद्रोहकी भावना रखने लगा। वह जेलरके नाक-कान काटनेकी तजवीज़ सोच रहा था कि जेलरने उसे बुलाया और कमरा बन्द करके उससे अपनी हजामत बनवानी शुरू करदी। हजामत बनवा चुकने पर जेलरने कहा--

"कमरा बन्द है, ऐसे मौक़ेपर तुम मेरे नाक-कान काटनेवाली अभिलाषा भी पूरी कर लो। मैं क़सम खाता हूँ कि यह बात किसीसे न कहूँगा।"

जेलर और भी कुछ शायद कहता मगर उसकी गर्दनपर टप-टप गिरनेवाले आँसुओंने उसे चौंका दिया। वह कैदीका हाथ अपने हाथोंमें लेकर अत्यन्त स्नेहभरे स्वरमें बोला--

"क्यों भाई! क्या मेरी बातसे तुम्हारे कोमल हृदयको आघात पहुँचा? मुझे माफ़ करो, मैंने ग़लतीसे तुम्हें तकलीफ़ पहुँचाई।"

अभागा क़ैदी सुबक-सुबक कर जेलरके पाँवोंमें पड़ा रो रहा था, जेलरके प्रेम, विश्वास और क्षमाभावके आगे उसकी विद्रोहाग्नि बुझ चुकी थी। वह आँखोंकी राह अपने हृदयकी वेदना व्यक्त कर रहा था।

त्यागी

साहूकारकी माताने कहा—"बेटा ! तुम लाखों रुपयेका लेन-देन करते हो, पर मैंने आजतक एक लाख रुपया एक स्थानपर रक्खा हुआ नही देखा। एक लाख रुपया चुनकर रखनेसे कितना लम्बा, चौड़ा, ऊँचा चबूतरा बनता है यह मै उस चबूतरेपर बैठकर देखना चाहती हूँ।"

एक लाख रुपयेका चबूतरा बना और उसपर वे बैठीं। माता जिस रुपयेपर बैठी ह वह तो दान करना ही चाहिए, यही सोचकर एक ब्राह्मण को बुलाया गया। दान देते हुए सेठको तनिक अभिमान छू गया। बोले—"पण्डितजी, दातार तो बहुत मिले होंगे, लेकिन ऐसा दातार न मिला होगा।"

पण्डितजी दान लेने अवश्य गये थे, परन्तु भिक्षुक मनोवृत्तिके नही थे। उनका स्वाभिमान जाग उठा और जेबसे एक रुपया निकालकर लाख रुपयेके चबूतरेपर डालकर बोले—

"तुम्हारे-जैसे दातार तो बहुत मिल जायँगे, पर मेरे-जैसे त्यागी बिरले ही होंगे, जो एक लाखको ठोकर मारकर कुछ अपनी ओरसे मिलाकर चल देते हैं।"

दुर्बलताका पाप

भेड़िया नदीके किनारे पानी पी रहा था कि उसने देखा—नीचेकी तरफ, बहावकी ओर एक भेड़का बच्चा भी पानी पी रहा है। उसे देखते ही चट मुँहमें पानी भर आया। बोला—

"क्यों बे ! पानीको जूठा क्यों कर रहा है ? देखता नही हम पानी पी रहे है ?"

भेड़का बच्चा बोला—"चचा ! आप ऊपरकी तरफ पानी पी रहे है, आपका जो जूठा पानी बहकर आ रहा है, मे तो उसे पी रहा हूँ।"

भेड़िया लड़नेका कोई बहाना न पाकर बोला—"अच्छा, तू यह तो बता कि तैने एक साल हुए हमें गाली क्यों दी थी ?"

भेड़-बालक सकपकाकर बोला—"चचा ! मेरी तो उम्र ही बमुश्किल छः महीनेकी है, भला एक साल पहले मै आपको गाली कैसे दे सकता था ?"

भेड़िया खीझकर बोला—"अच्छा, तेरी माँ मुझे कल कोस क्यों रही थी ?"

भेड़का बच्चा बोला—"चचा ! उसे तो मरे हुए भी एक माह हो गया, वह आपको कल कहाँसे कोसने आती ?"

भेड़ियेने देखा कि भेड़का बच्चा बड़ा चालाक है, किसी बातपर जमने नही देता। अतः झुँझलाकर—" क्यों बे छोकरे, तू इतनी देरसे हमारा सामना क्यों कर रहा है ?"—कहा और उसे मार डाला।

तब पेड़पर बैठी हुई मैनाने तोतेसे कहा—"देखा, निर्बल सबलके साथ कितना ही सभ्यतापूर्ण और सचाईका व्यवहार करे, वह सुरक्षित रह नहीं सकता। भेड़ जब तक भेड़ बनी रहेगी उसे खानेको भेड़िये पैदा होते ही रहेंगे।"

पर्देमें पाप

एक प्रेमी-प्रेमिका आजीवन ब्रह्मचर्य्यपूर्वक जीवन व्यतीत करनेकी अभिलाषा रखते थे। रोज़ाना एक साथ रहते, खाते-पीते, सोते-बैठते, हँसते-खेलते, पर क्या मजाल जो मनमें विकार आता। इसी तरह सानन्द निर्विकार प्रेममय जीवन व्यतीत हो रहा था कि एक रोज़ कामदेव के अन्धड़ने प्रेमीका चित्त चलायमान कर दिया। मनके किसी कोनेमें छुपा हुआ पाप मुँहपर आगया। प्रेमिकाने प्रेमीको भूल सुझाई, पर वह न माना। रतिगृहमें जानेसे पूर्व मकानके नीचे बहती हुई नदीपर स्नान करने गया तो देखा एक मनुष्य ढोल लिये दीवारके सहारे खड़ा है। पूछने पर ढोलवालेने बतलाया––

"आज प्रसिद्ध शीलवान प्रेमियोंके सत डिगेंगे, इसलिये डोंडी पीटनेको खड़ा हुआ हूँ।"

प्रेमीने स्नान किया और मकानमें आकर सदैवकी भाँति चुपचाप सो गया। सुबह उठकर देखा तो ढोलवाला चला जा रहा था। दर्याफ़्त करनेपर कहा––

"अब सत नहीं डिगेगा इसीलिये जा रहा हूँ।"

तब प्रेमिकाने मुस्कराकर कहा––"देखा! सात पर्दोंमें सोचा हुआ पाप भी तालाबकी काईके समान जनताके मुँहपर आ जाता है।"

जाति-द्रोह

बारह वर्षके बालक शेरसिहने अपने कुत्तेको पुचकारते हुए अपनी माँसे कहा—"माँ, लोग अपने लड़कोंके—तोताराम, वृषभ-चरन, हंसराज, मयूरध्वज, अश्वसेन, भालूमल, केहरिचन्द, कपिध्वज, हाथीसिंह, नीलकण्ठ और लड़कियोंके—मैना, कट्टो, कोकिला, मृणालिनी, हंसा, नागकुमारी, गोमती वगैरह, अन्य पशु-पक्षियोंके नाम तो रखते हैं, लेकिन कुत्तेके पर्यायवाची—श्वानसेन, कूकरनाथ, रात्रिजागरमल, वग़ैरह—नाम नही रखते। उल्टा किसीको कुत्ता महाशय कह दो तो बुरा मान जाता है और लड़ने-मरनेको तैयार हो जाता है। माँ, मेरा नाम शेरसिंहकी बजाय श्वानसेन रख दो, मुझे यह नाम जितना प्रिय है उतना ही अपने वर्त्तमान 'शेरसिह' नामसे नफ़रत है। कल सरकसमें देखा शेर तो माँस खाता है, उसके शरीरमेंसे महादुर्गन्ध आती है, बड़ा ही क्रोधी और हिसक पशु है।"

माँ बालककी सरलतापर मुस्कराई, फिर प्यारसे बोली—"बेटा! कुत्ता स्वाभिभक्त और वफ़ादार तो है लेकिन वह अपनी जातिसे द्रोह रखता है। अपनोंको देखते ही काटनेको दौड़ता है। जो जाति औरोंसे प्रेम और अपनोसे बैर रखती है, उस जातिको सब नफ़रतकी नज़रसे देखते हैं। इसलिये कुत्ता शब्द इतना घृणित, अपमानजनक बन गया है कि कोई भी इसे अपने लिये नहीं सुनना चाहता।"

शेरसिंहने माँकी बात सुनी तो उसने अपना पालतू कुत्ता दूर भगा दिया।

भाइयोंकी बदौलत

देहलीकी तारीफ़ सुनकर मथुराका एक कुत्ता सैर करनेके लिये आया तो देहलीके कुत्तोंने उसका निवास-स्थान पूछा। स्थान बतानेपर पूछा—"मथुरासे कितने महीनोमें आ पाए हो ?"

उत्तर मिला—"सात रोज़में।"

देहलीके कुत्तोने हैरानीसे कहा—"हैं! हम तो सुना करते थे कि मथुराका रास्ता महीनोंका है। तुम सात रोज़में कैसे आ गये ?"

मथुरावाले कुत्तेने निहायत आजिज़ीसे जवाब दिया—"बेशक रास्ता तो महीनोंका ही है, मगर अपने भाइयोंकी बदौलत यह रास्ता एक हफ़्ते में ही तय कर सका हूँ।

"वह कैसे ?"

"वह ऐसे—मथुरासे चला तो चौमाके अपने कुत्ते भाइयोंने मेरी टाँग पकड़कर आवभगत की, उनसे जान छुड़ाकर भागा तो छटीकरावालोंने आड़े हाथ लिया, उनसे बचकर भागा तो आगे छातई, फिर कोसीके भाइयोंने गला दबोचा। वहाँसे निकलकर भागा तो—होडल, पलवल, बल्लभगढ़, फ़रीदाबाद, निज़ामुद्दीन, ओखला, वग़ैरहके कुत्ते भाइयोंने अपनी औक़ातके अनुसार ख़ातिर तवाज़ह की। कहीं भी आरामसे साँस न लेने दिया। सारे रास्ते भागा हुआ आ रहा हूँ।"

देहलीके कुत्तोंने मारे शर्मके गर्दन नीची करली और मनमें सोचने लगे—"हा! हमारी भी कैसी पतित क़ौम है जो अपनोंसे बैर रखती है और दूसरोंके तलुवे चाटती है।"

ईर्ष्याका परिणाम

दो पण्डित दक्षिणा प्राप्त करनेकी नीयतसे एक सेठके यहाँ पहुँचे। विद्वान् समझकर सेठ साहबने उनकी काफ़ी आव-भगत की। उनमेंसे एक पण्डित जब स्नान वग़ैरहके लिये गये तो सेठजी दूसरे पण्डितसे बोले–

"महाराज ! ये आपके साथी तो महान् विद्वान् मालूम होते हैं।"

पण्डितजीमें इतनी उदारता कहाँ जो दूसरेकी प्रशंसा सुन लें। मुँह बिगाड़कर बोले––"विद्वान् तो इसके पड़ोसमें भी नहीं रहते। यह तो निरा बैल है।"

सेठजी चुप हो गये। जब उक्त पण्डित संध्या वग़ैरहमें बैठे तो पहले पण्डितजीसे बोले–"महाराज आपके साथी तो प्रकाण्ड विद्वान् नज़र आये।"

ईर्ष्यालु पण्डित अपने हृदयकी गन्दगीको बखेरते हुए बोला––"अजी, विद्वान्-उद्वान् कुछ नहीं, कोरा गधा है।"

भोजनके समय एकके आगे घास और दूसरेके सामने भुस रखवा दिया गया। पण्डितोंने देखा तो आगबबूला हो गये। बोले––"सेठजी ! हमारा यह अपमान, इतनी बड़ी धृष्टता !"

सेठजी हाथ जोड़कर बोले––"महाराज ! आप ही लोगोंने तो एक दूसरेको गधा और बैल बतलाया है। अतः गधे और बैलके योग्य ख़ुराक मैंने सामने रख दी। आप ही बतलाइये, इसमें मेरा क्या क़ुसूर है ? मैं तो आप दोनोंको ही विद्वान् समझता था, पर वास्तविक बात तो आपने स्वयं ही बतला दी।"

सेठजीकी बातसे पण्डित बड़े लज्जित हुए और पछताते हुए मनमें कहने लगे––"वास्तवमें जो अपने साथीको बढ़ा हुआ नहीं देख सकता, वह स्वयं भी नहीं बढ़ सकता। स्वयं प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये अपने साथियोंकी प्रतिष्ठा करना, उन्हें बढ़ाना, अत्यावश्यक है। ईर्ष्यालु मनुष्योंकी हमारी जैसी ही गति होती है।"

मूर्ख ईर्ष्यालु

एक मनुष्यकी पूजा-उपासनासे प्रसन्न होकर देवीने प्रकट होकर उसे एक शंख दिया और कहा—"जो तू चाहेगा वही इस शंखके बजानेपर मिलेगा और पड़ोसियोंको तुझसे दूना मिलेगा।" भक्त प्रसन्न होकर चला गया। उसने शंख बजाया और कहा कि मेरा एक आलीशान मकान बन जाय। शंख बजाते ही मकान तुरन्त बन गया, और पड़ोसियोंके वैसे ही दो-दो महल बन गये। भक्तको यह बहुत बुरा लगा। भला ईर्ष्यालु मनुष्य दूसरोंको कब फूलते देख सकता है? उसने क्रुद्ध होकर शंखको एक कोनेमें डाल दिया। मगर कुछ अर्सेके बाद उसे रुपयोंकी बड़ी सख्त ज़रूरत हुई। लाचार होकर शंख बजाया। शंखके बजते ही उससे दूने रुपये पड़ोसियोके घरोंमें आन पड़े। यह उससे बर्दाश्त न हुआ, और उसने फिर क्रुद्ध होकर कहा कि "मेरे घरके आगे चार-चार कुएँ खुद जाएँ।" शंख बजा और चार कुएँ उसके यहाँ और आठ-आठ पड़ोसियोंके घरके आगे खुद गये। फिर कहा "मेरी एक आँख फूट जाय।" शंख बजते ही उसकी एक, और पड़ोसियोंकी दोनों आँखें फूट गई। और अन्धे होनेके कारण पड़ोसी बिचारे कओंमें गिर पड़े। उन्हें कुओंमें गिरते देख ईर्ष्यालु मनुष्यको बड़ी प्रसन्नता हुई, हालाँकि एक आँख उसकी भी फूट गई थी।

फ़िक्र बुरी, फ़ाक़ा भला

सुनते हैं एक सण्डमुसण्ड फ़क़ीरने किसी बादशाहके हाथीको पूँछ खींचकर चलनेसे मजबूर कर दिया था। इस घटनाकी सूचना बादशाहको दी गई तो उसे भी ऐसा दिलेर आदमी देखनेकी अभिलाषा हुई। फ़क़ीरको देखनेपर बादशाह उसकी ताकतका सबब समझ गया। उसने किसी तरह अपनी मस्जिदमें बिना नाग़ा रोजाना चिराग़ जलानेके लिये उस अलमस्त फ़क़ीरको राज़ी कर लिया। चिराग़ जलानेके उपलक्षमें शाही भोजनालयसे तरमतर सुस्वादु भोजन फ़क़ीरको मिलने लगा।

एक माहके बाद हाथी रोकनेका अवसर दिया गया तो वह पूँछके साथ घिसटता चला गया। बादशाहने फ़क़ीरका यह हाल देखा तो मुस्करा कर पूछा—"साईं! जब रूखा-सूखा खाते थे और फ़ाक़े करते थे, तब तो हाथी रोक सके और अब शाही बावर्चीख़ानेसे बेशक़ीमती ताक़तवर ग़िज़ा खानेपर भी न रोक सके, बड़े ताज्जुबकी बात है!"

"शाहे आलम! इसमें ताज्जुबकी क्या बात है? जब अक्सर फ़ाक़े होते थे, लेकिन फ़िक्र पास भी न फटकती थी। अब तर निवाले मिलते हैं, मगर रोज़ाना चिराग़ जलानेकी पाबन्दीकी चिन्ताने मेरे शरीरमें घुन लगा दिया है।"

— — — — —

नीम हकीम

एक हकीम किसी सरायमें ठहरे हुए थे। वही एक ऊँट भी बँधा हुआ था। ऊँटने पास ही पड़े हुए तरबूजको खाना चाहा तो वह उसके मुँहमें अटक गया। हालत यह हुई कि न वह निगल ही सकता था न उगल ही सकता था। बेचैनीके मारे वह ज़मीनमें लोट-पोट होने लगा। ऊँट-वाला ऊँटकी इस हालते ज़ारको देखकर बहुत घबराने लगा। हकीमजीने ऊँटको तरबूज़ खाते देख लिया था। अतः उन्होंने १५ रु० ऊँटवालेसे लेकर ऊँटकी गर्दनके नीचे एक पत्थर रखकर और एक ऊपरसे मारकर तरबूज को तोड़ दिया और ऊँट राजीखुशी बलबल करता हुआ खड़ा हो गया। हकीमजीके नौकरने देखा तो उसके मुँहमें भी पानी भर आया। उसने १५रु० मासिकपर नौकर रहनेके बजाय मिनटोंमें १५रु० कमा लेना बुद्धिमत्ता समझकर नौकरी छोड़ दी। और एक शहरमें 'गलेके फोड़ों के विशेषज्ञ' का साइन बोर्ड लगाकर जम गया। क़ुदरतकी बात, शहरके रईसकी पत्नी गलेके फोड़ेसे मरणासन्न थी। योग्य डाक्टर इलाज कर रहे थे कि किसीने इनकी भी सूचना दी तो बुलाये जानेपर पाँच मिनिटमें शर्तिया आराम कर देनेकी बात कही। मरता क्या न करता, लोगोंने विश्वास कर लिया। हकीमजीने १५रु० लेकर वही करतब दिखाया जो वे सरायमें देख चुके थे। ऊँट तो बच गया था, परन्तु सेठानीने आँखें फेर दी। लोगोंने पूछा कि मूर्ख! तैंने यह क्या किया? तो नीम-हकीम सहज स्वभाव बोले—"बड़े हकीमजीने तो ऊँट इसी प्रकार अच्छा किया था।"

बदपरहेज़

एक सेठको खाँसी थी। खाँसीमें दही अत्यन्त नुकसानदेह है। परन्तु सेठजी दही खानेसे बाज़ नही आते थे। उन्हें दहीका ऐसा चस्का लगा हुआ था कि समझानेपर भी नही मानते थे। रोग बढ़ता ही जा रहा था। नित नये वैद्य-हकीम आते परन्तु सेठजीकी बदपरहेज़ीसे घबराकर भाग खड़े होते। एक अन्य वैद्यजीने सेठजीकी यह कैफ़ियत सुनी तो उन्होंने सेठजीको आरोग्य कर देनेका विश्वास दिलाया। परन्तु शर्त यह रक्खी कि जबतक इलाज चलेगा दही अवश्य खाना पड़ेगा। सेठजीको और क्या चाहिए? मनके माफ़िक वैद्य पाकर बड़े प्रसन्न रहने लगे और खूब इनाम आदि देने लगे। वैद्यजी भी अवसरकी खोजमें रहने लगे और ऐसी दवा देते रहे जिससे रोग अधिक न बढ़ने पाए क्योंकि दही खानेके कारण रोग घटनेका तो कोई उपाय ही न था। एक रोज़ सेठजी मुस्कराकर बोले—"देखो, यह भी तो वैद्य है जो दही खाना लाज़िमी बताते हैं। इनके इलाजसे रोग घटा नही तो बढ़ा भी नही। पुराना रोग जब ठहर गया है तो एक दिन नष्ट भी हो ही जायगा।"

वैद्यजी बात बनती देखकर बोले—"सेठजी! खाँसीमें दही खानेसे तीन लाभ हैं। घरमें चोरी नही होती, कुत्ता कभी नही काटता और बुढापा कभी नहीं आता!"

सेठजीने कारण बतानेकी उत्सुकता प्रकट की तो बोले—"रातभर खाँसते रहनेसे घरमें चोर नहीं घुस सकते। निर्बलताके कारण लाठी रखनी पड़ती है, अतः कुत्ते पास नहीं फटक सकते। और जवानीमें ही मर जानेसे बुढ़ापा नहीं आ सकता।"

सेठजीकी नानी मरे जो फिर कभी दही खाया हो।

अफ़ीमचीकी होशियारी

देहातके एक अफ़ीमची दिल्ली सैर करने आये और लक्ष्मीनारायण की धर्मशालामें ठहर गये। रातको ख़ुश्कीने ज़ोर किया तो धर्मशालाके बाहरवाले हलवाईसे आठ आनेकी रबड़ी मलाई खाई। अफ़ीमचीने रुपया दिया तो हलवाईके पास रेज़गारी नही थी। लाचार बाक़ी अठन्नी अगले रोज़ ले जाना तय हुआ। अफीमचीने होशियारी यह की कि दुकानकी ठीक-ठीक पहचान करली ताकि दूसरे रोज पहचाननेमें भूल न हो। अगले रोज़ अफीमची एक मुसलमान दर्जीसे जाकर बोला—

"लाला ! कल रातके आठ आने वापिस दिलाइये।"

"कैसे आठ आने ?"

"कल रातको एक रुपया देकर आठ आनेकी रबड़ी ली थी। उस वक़्त रेज़गारी न होनेसे आपने आज ले जानेको कहा था। क्या रातकी अठन्नी इतनी जल्दी भूल गये ?"

दर्जी झल्लाकर बोला—"अमाँ ! अन्धे हो, यह दर्जीकी दुकान है या हलवाई की ?"

"क्या ख़ूब ? अठन्नीके लिये पेशा बदला-सो-बदला, मज़हब भी बदल बैठे। भई यह शहरवाले भी कैसे चालाक होते है !"

लोगोंने झगड़ेका सबब पूछा तो अफ़ीमची निहायत संजीदगीसे बोला—

"अरे साहब ! मैं क्या दीवाना हूँ जो परदेशमें नाहक झगड़ा मोल लूँगा ? रातको यह सांड जिस दूकानके आगे बैठा था, वहीसे रबड़ी ली थी, देखलो ग़रीब अभीतक वही बैठा है।"

मौलवीकी दाढ़ी

मौलवी लतीफ़को बीमारीकी वजहसे जब लम्बी छुट्टी लेकर घर जाना पड़ा तो अपनी एवज़ीमें एक नये मुल्लाको छोड़ गये। ताकि वापिसी पर गाँवकी मस्जिदका अधिकार बरक़रार बना रहे। मगर नये मुल्ला एक ही काइयाँ थे। अपनी मीठी ज़बानसे लोगोंपर ऐसी मोहनी डाली कि हर्दिलअजीज बन गये। मौलवी लतीफ़ ड्यूटीपर वापिस आये तो उन्होंने गाँवका नक़्शा ही बदला हुआ पाया। गाँववाले उनकी ख़ैरोआफ़ियत पूछनेके बजाय उनसे आँखें चुराने लगे।

मौलवी लतीफ़ भी पुराने घाघ थे। मौक़ामहल देखकर वे भी नये मुल्लाकी तारीफोंके पुल बाँधने लगे। जुम्मेकी नमाजको गाँवके सब मुसलमान नमाज पढ़ने आये तो उनके सामने नये मुल्लाको मुखातिब करते हुए बोले—

"मौलाना! मैं तो आपको वली समझता हूँ। गाँव-गाँवमें आपकी करामातोंकी धूम मची हुई है। जिसे भी आपने अपनी दाढ़ीका एक बाल दे दिया, निहाल हो गया। कंगाल, मालामाल हो गये। बे औलादोंकी गोदें भर गईं। नाबीने आँखवाले हो गये। बूढ़ोंको जवानी मिल गई। रोगी निरोग हो गये। ख़ुदाके वास्ते मुझे भी एक बाल अता फ़र्माइये ताकि बतौर तबर्रुक अपनी जानसे भी ज़्यादा अजीज रख सकूँ और मनकी मुरादें पूरी कर सकूँ।"

मुल्लाजीने तारीफ़ सुनी तो बाछें खिल गईं। आव देखा न ताव, चट एक बाल नोंचकर मौलवी लतीफ़को मरहम्मत फ़रमा दिया। बालका देना था कि गाँववाले भी इसरार करने लगे, मुल्लाजीको असमंजसमें पड़ा देख सब एकबारगी टूट पड़े। और इस न्यामतसे कहीं कोई महरूम न रह जाय, इसी आपाधापीमें मुल्लाजीकी दाढ़ी ठूँठ हो गई।

दाढ़ीविहीन मुल्लाजी बोरिया-बधना बाँधकर रातको खिसक गये और मौलवी लतीफ़की उस्तादीका लोहा मानते गये।

मुशायरेमें परिहास

शिमलेमें एक आलीशान मुशायरा हो रहा था। पंजाबके प्रीमियर सर सिकन्दर हयातख़ाँ मुशायरेके सभापति थे ? ख़िलाफ़त आन्दोलनके मशहूर नेता मुहम्मद अली मर चुके थे। और उनके छोटे भाई शौक़त अली उसमें शिरकत फ़र्माते थे। जब आपके ग़ज़ल पढ़नेका नम्बर आया तो ग़ज़ल पढ़नेसे पूर्व आपने श्रोताओंसे कहा—"हज़रात ! मेरे वालिद मुहतरिम भी शायर थे और 'गौहर' तखल्लुस फ़र्माते थे। मेरे बड़े भाई मुहम्मदअली भी शायर थे और 'जौहर' तख़ल्लुस रखते थे और मैं भी शायरी करता हूँ। और..."

बीचमें ही एक श्रोता बोला—'शौहर'। गौहर, जौहरके तुकमें शौहरका मजाहिया तख़ल्लुख ईजाद करनेपर जनतामें हँसीके फव्वारे छूट पड़े। खुद मौलाना भी इस फ़ब्तीसे काफ़ी देरतक हँसते रहे। और फ़ब्ती कसनेवालेकी काफ़ी तारीफ़ की।

शौक़तअली भाईके मरनेके बाद बुढ़ापेमें एक अमरीकन लेडीसे शादी करके ताज़े-ताज़े शौहर बने थे। गौहर, जौहरके तुकके साथ शौहर-में यह व्यंग भी निहित था।

वहमकी दवा

सुनते है वहमकी दवा लुक़मान हकीमके पास भी नहीं थी। वहम का रोग असाध्य है। जिसे यह रोग हुआ, उसे फिर कोई इस रोगसे मुक्त नही कर सकता। परन्तु यह बात सोलह आने सही नहीं, वहमकी भी दवा है। एक अफ़ीमची सेठके वहमको दूर करके एक नौकरने किस तरह विश्वास प्राप्त किया, नीचेके उदाहरणसे मालूम किया जा सकता है।

एक अफ़ीमची सेठको वहमके रोगने बुरी तरह घेर लिया था। उनको अपनी पत्नी और सन्तानपर भी विश्वास नही था। नित नयी व्यवस्था बनाते थे, नौकर बदलते थे, परन्तु सन्तोष न होता था। हर कामके लिये जुदे-जुदे कर्मचारी नियुक्त थे, फिर भी सभी कार्य्य वेढंगे चलते थे।

अफ़ीमची सेठको सबसे बडी शिकायत यह थी कि रातको जब वे पीनकमें होते थे तब मलाईदार दूध उन्हें न पिलाकर लोग स्वयं पी जाते थे। आखिर तंग आकर सिर्फ़ इस कार्य्यके लिये ही उन्होंने एक नौकर रक्खा। आदेश दिया गया कि रोज़ाना रातको चार पैसेका दूध मलाईदार सेठजीको पिला दिया करे। दूध उन दिनों तीन आने सेर मिलता था। अतः नौकर एक पैसा अपनी गाँठमें रखकर तीन पैसेका दूध पिलाने लगा। दूसरा नौकर रखा तो वह दो पैसेका दूध पिलाता और एक-एक पैसा दोनो नये-पुराने नौकर बाँट लेते। तीसरा नौकर रखा तो वह तीन पैसे परस्पर बाँटकर एक पैसेका ही दूध पिलाता। लाचार होकर चौथा नौकर रखा गया तो तीनों नौकर हैरान कि तीन पैसे तो यह हमको दे देगा और एक पैसा स्वयं भी रखना चाहेगा, फिर यह दूध कैसे पिलायेगा? चौथा नौकर पूरा चंट था। इस कानाफूसीकी भनक उसके कानमें गई तो बोला—"मुझे क्या अपने जैसा बुद्धू समझते हो? देखते जाओ मालिकको किस प्रकार प्रसन्न करके अपनी नौकरी स्थायी बनाता हूँ।"

रातको ये हज़रत हलवाईकी दूकानसे खाँसीकी दवा खानेके बहाने तनिक-सी मलाई माँग लाये और सेठजीकी मूँछोंपर लगा दी। प्रातः सेठजी उठे और ओठोंपर जो जीभ लगी तो मलाईका स्वाद पाकर बाग़-बाग़ हो गये। बोले—"बड़े भाग्यसे यह ईमानदार नौकर मिला है। देखो तो सही, दूध कैसा मलाईदार पिलाया कि मलाई अभीतक मूछोंपर लगी हुई है।"

हुनरकी कमी

एक गाँवमें एक बुड्ढा रंगरेज रहता था। उसे काला, पीला, हरा और लाल ये चार ही रंग रँगने आते थे। गाँवकी बहू-बेटियाँ कभी धानी, प्याजी, किसमिस्मी, सुर्मई, ऊदी, मोरकण्ठी वग़ैरह रँगनेको ज़िद करती, तो बुड्ढा कहता, मेरी बेटीके गोरे बदनपर खिलेंगे तो काले, पीले, हरे और लाल रंग ही। बाक़ी यूँ कहो जौन-सा रंग दूंगा। बहू-बेटियाँ नित नये रंगकी फ़र्माइश करती, मगर रँगकर आते वही रंग जो बुड्ढा रँगना जानता था।

करनीका फल

एक-एक करके आठ पुत्र-वधुओंके भरी जवानीमें विधवा हो जानेपर भी वृद्धकी आँखोंमें आँसू न आये। साम्यभावसे सब कुछ सहन करता रहा।

गाँवके कुछ लोग उसके धैर्यकी प्रशंसा करते। कुछ लोग बज्र-हृदय कहकर उसका उपहास करते। श्मशानमें जिन्हें शीघ्र वैराग्य घेर लेता है और फिर घर आकर सांसारिक कार्योमें लिप्त हो जाते हैं—ऐसे लोग उसे जीवन्मुक्त और विदेह कहनेसे न चूकते और छिद्रान्वेषी उसे मनुष्य न मानकर पशु समझते।

बात कुछ भी हो, एक-एक करके ब्याहे-त्याहे आठ लड़के दो वर्षमें उठ गये। उनकी स्त्रियोंके करुण-क्रन्दनसे पड़ोसियोंको रुलाई आजाती, पर वृद्ध खटोलेपर चुपचाप बैठा रहता।

कुछ दिनों बाद गाँवमें प्लेगकी आँधी आई तो उसमें उसका एकमात्र पौत्र भी लुढ़क गया। वृद्धके धैर्यका बाँध टूट गया, उसने अपना सिर दीवारसे दे मारा। नारदमुनि अकस्मात् उधरसे निकले तो वृद्धको डकराते हुए देखकर खड़े हो गये।

विपद्-ग्रस्तको देखकर सूखी सहानुभूति प्रकट करनेमें लोगोंका बिगड़ता ही क्या है? जो कल दहाड़ मारकर रोते देखे गये हैं, वे भी उपदेश देनेके इस सुनहरी अवसरसे नही चूकते। फिर नारदमुनि तो आखिर नारदमुनि ठहरे! कर्त्तव्यभारके नाते कण्ठमें मिसरी घोलते हुए नारदमुनि बोले—

"बाबा! धैर्य रखो, रोनेसे क्या लाभ?"

वृद्धने अजनबी-सी आवाज़ सुनी और अचकचाकर देखा तो पीताम्बर पहने और हाथमें वीणा लिये नारद दिखाई दिये। वृद्ध उन्हें साधारण भिक्षु समझकर भरेहुए कण्ठसे बोला—"स्वामिन्! धैर्यकी भी कोई सीमा है। एक-एक करके आठ बेटोंको आगमें धर आया। ले-देकरके

घरमें एक टिमटिमाता दीपक बचा था, सो आज उसे भी क्रूरकालकी आँधीने बुझा दिया। फिर भी धैर्य रखनेको कहते हो ! बाबा, धैर्य मेरे पास अब है ही कहाँ जो उसे रखूँ ? उसे तो कालने पहले ही छीन लिया। मुझे अब बुढ़ापेमें रोनेके सिवाय और काम भी क्या रह गया है, स्वामिन् !"

सहनशक्तिसे अधिक आपत्ति आनेपर आस्तिक भी नास्तिक बन जाते हैं। जो पर्वत सीना ताने हुए करारी बून्दोंके वार हँसते हुए सहते हैं, वे भी आग पड़नेपर पिघल उठते हैं—ज्वालामुखीसे सिहर उठते हैं। नारदको भय हुआ कि वृद्ध नास्तिक न हो जाय। अतः बोले—

"तो क्या तुम अपने पौत्रकी मृत्युसे सचमुच दुखी हो ? वह तुम्हें पुनः दिखाई दे जाय तो क्या सुखी हो सकोगे ?"

वृद्धने निर्निमेष नेत्रोंसे नारदकी ओर देखकर अपने हृदयकी वेदना को आँखोंमें व्यक्त करके अपनी अभिलाषाको मौन भाषामें प्रकट कर दिया।

नारदकी मायासे क्षितिजपर पौत्र दिखाई दिया तो वृद्ध विह्वल होकर लपका।

"अरे मेरे लाल, तू कहाँ चला गया था ?"

"अरे दुष्ट, तू मेरे शरीरको छूकर अपवित्र न कर। पूर्व जन्ममें तूने और तेरे आठ पुत्रोंने जिन लोगोंको यन्त्रणाएँ पहुँचाई थी, ऐश्वर्य और अधिकारके मदमें जिन्हें तूने मिट्टीमें मिला दिया था, वे ही निरीह प्राणी तेरे पुत्र और पौत्र रूपमें जन्मे थे। ये रुदन करती हुई तेरी आठों पुत्र-वधुएँ तेरे पूर्व जन्मके पुत्र हैं, जिन्होंने न जाने कितनी विधवाओंका सतीत्व हरण किया था।"

स्वर्गीय आत्मा विलीन हो गई। वृद्धके चेहरेपर स्याही-सी पुत गई। नारदबाबा वीणापर गुनगुनाते चले गये—

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाऽशुभम्।"

ज़रूरतके मुताबिक़ ईमान

एक मुसलमान दर्ज़ीने रोग-शैय्यापर पड़े हुए स्वप्न देखा कि वह सचमुच मर गया है और क़ब्रमें दफ़ना दिया गया है। कब्रमें हरी, पीली, लाल, नीली, रंग-विरंगकी हजारों क़िस्मकी उसे झण्डियाँ टँगी हुई दिखाई दी। पासमें खड़े हुए फ़रिश्तेसे दर्याफ़्त करनेपर मालूम हुआ कि दर्ज़ीके पेशेको करते हुए जिस-जिस रंगका कपड़ा चुराया था, उसकी ये शहादत हैं ताकि अल्लाहमियाँ उन्हें देखकर गुनाहोंकी जाँच करके सज़ा दे सकें। दर्ज़ीने सज़ाकी बात सुनकर घबराहटमें ज्यों ही "या अल्लाह तोबा" कहा कि उसका स्वप्न भंग हो गया। धीरे-धीरे अच्छा होनेपर जब वह दुकानपर आया तो शागिर्दोंको हुक्म दिया कि—"मैं अगर किसी कपड़ेमेंसे कुछ बचाना चाहूँ तो तुम लोग 'उस्तादजी, झण्डी' कह दिया करो।" चुनांचे जब कभी उस्तादजीकी नीयत बद होती, हुक्मके मुताबिक़ शागिर्द लोग "उस्तादजी, झण्डी" कह देते और उस्तादजीकी बेईमान रूह सजाके ख़ौफ़से काँप जाती। एक बार किसी जजकी अचकन का बहुत ही बढ़िया कपड़ा आया। देखते ही उस्तादजीके मुँहमें पानी भर आया। एक वास्कटके पेश निकालनेको ज्यों ही क़ैंची चलाई कि हस्बमामूल शागिर्दोंने "उस्तादजी, झण्डी" की आवाज़ फेंकी। शागिर्दों की इस रोज़ानाकी नसीहतसे उकताकर उस्तादजी बोले—अबे बेवक़ूफ़ो, इस रंगका कपड़ा वहाँ नही था, और वास्कटके पेश निकाल लिए।

व्यर्थकी रार

दो ग्रामीण मित्र थे। एक रोज एकने कहा, "हम तो अबकी बार ईख बोयेंगे।"

दूसरा बोला, "ईख तू बोना, हम तो भैंस लायेंगे।"

पहला बोला—"भैंस तो तू बेशक ले आना मगर बाँधकर रखना, ऐसा न हो कि मेरी ईख चर जाय।"

दूसरा तमककर बोला—"भाई जानवर है, आदमी तो है नहीं, जो कहा मान जाय, उसके मनमें आयेगी तो ईख खायेगी ही।"

यह सुना तो पहला झल्ला गया और बोला—"तो बस तू भैंस ला चुका।"

दूसरेने भी मुँह मटकाकर उत्तर दिया—"तो बस तू भी ईख बो चुका।"

पहलेने चट उँगलीसे ज़मीनपर लकीरें काढ़ दीं और बोला—"ले मैं तो ईख बो चुका, अब तू अपनी भैंस छोड़।"

दूसरेने वहीं से एक कंकरी ले उन लकीरोंमें डाल दी और कहा—"ले, मैं तो अपनी भैंस छोड़ चुका, कर ले क्या करता है।"

दोनों एक दूसरेपर टूट पड़े और ख़ूनम-ख़ून हो गये।

लक्ष्मीकी उपासना

एक सेठ साहब गद्दीपर बैठे हुए पानकी पीक बार-बार सोनेके उगालदानमें थूक रहे थे। एक लक्ष्मी-उपासक भी वहाँ बैठे हुए थे। जब सेठजीका बार-बार थूकना उनसे सहन न हुआ तो उगालदानको लात मारकर बोले—"सुसरी ! यहाँ तो थुकवानेमें भी नही शर्माती और मै जन्मभर पूजा करते-करते थक गया तब भी न आई।"

सेठ साहबने यह हरकत देखी तो हँसकर बोले—"भोले भाई ! लक्ष्मीकी उपासना करनेसे लक्ष्मी नही आती, लक्ष्मीको ठुकरा देनेवाले वीतराग प्रभुकी उपासनासे लक्ष्मी तो क्या तीन लोकका राज्य पाँव चूमनेसे नही शर्माता। लक्ष्मीको जितना पूजो उतना ही दूर भागती है और जितना ही ठुकराओ (दान करो) उतना ही चिमटती है। क्या यह शेर नही सुना—

भागती फिरती थी लक्ष्मी, जब तलब रखते थे हम।
जब हमें नफ़रत हुई, वह बेक़रार आनेको है॥

कठोर मालिक

एक ज़मीदार हिसाब-किताबके बड़े सख़्त थे। नौकरोंसे ज़रा भी नुक़सान होता तो उसका मुआवज़ा वसूल कर लेते। एक दिनकी भी ग़ैरहाज़िरी होती तो नागा काट लेते। एक रोज़ बैलगाड़ीमें बैठकर ज़मीदारी वसूल करने जा रहे थे। नौकर पीछे-पीछे पैदल चल रहा था कि रास्तेमें शत्रुओने घेर लिया। ज़मीदार साहबने सहायताके लिये नौकरको आवाज़ दी तो वह बोला—मुझे आज छुट्टीपर समझिये, आजकी भी नागा काट लीजियेगा।

सेवा-धर्म

एक बार एक परोपकारी बन्धुके पास रात्रिके समय एक देव आया और नोटबुक दिखाकर बोला--"मैं इसमें उन महानुभावोंके नाम लिख रहा हूँ जो शुद्ध हृदयसे ईश्वरकी सेवा करते हैं। कहिये इसमें आपका नाम लिखूँ या नहीं।" परोपकारी बन्धुने नम्रतापूर्वक कहा--क्षमा कीजिये महाशय, मेरा नाम इस डायरीमें न लिखें। मैं तो ईश्वरके बन्दों-की सेवा करता हूँ, यदि मनुष्य-सेवकोंकी कोई डायरी आपके पास हो, तब सहर्ष उसमें मेरा नाम लिख सकते हैं, क्योंकि--

खुदाके बन्दे तो हैं हज़ारों बनोंमें फिरते हैं मारे-मारे।
मैं उनका बन्दा बनूँगा जिनको ख़ुदाके बन्दोंसे प्यार होगा।

--'इकबाल'

सुबह उठकर देखा तो सर्व प्रथम स्वर्णाक्षरोंमें उसीका नाम डायरीमें अंकित था।

जाटकी कृतज्ञता

एक मजिस्ट्रेटका नाम चिराग़अली था। उसने एक जाटको निर्दोष समझकर मुक्त कर दिया तो जाट कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला--"अरे साब! तेरा चराग़अली नाम किस मूरखने रखा है? तू तो मसालअली है।"

बादशाहकी रामायण

एक बादशाह और उसका वज़ीर कहीं जा रहे थे कि एक गाँवमें पण्डितजी कथा बाँच रहे थे। बादशाहने कथाका नाम पूछा तो बतला दिया गया कि रामायणसे राजा राम-सीताकी कथा कही जा रही है। बादशाहको यह बर्दाश्त कहाँ कि उसके राजमें किसी अन्य राजाकी कथा सुनी जाय। उसने पण्डितजीको हुक्म दिया कि आइन्दा हमारी रामायण कहा करो।

पण्डितजी भी पूरे घाघ थे। उन्होंने बादशाही रामायण बनानेके लिये छः माहका समय और मुँह माँगा इनाम ले लिया। पाँच माहके पश्चात् दर्बारमे हाज़िर होकर अर्ज़ की—

"जहाँपनाह ! रामायण लगभग तैयार है। सिर्फ़ एक बात लिखनी रह गई है। राजा रामकी रानी सीताको रावण चुरा ले गया था। आपकी बेगमको कौन उड़ा ले गया है, बस हुजूर उस मूजीका नाम बतलादें ताकि रामायणमें वह दर्ज कर दू।"

बादशाहने सुना तो बड़ा चकराया और घबराकर बोला—"ना बाबा ना, हमें माफ़ करो। हम बाज़ आये ऐसी रामायण बनवानेसे।"

बुढ़िया पुराण

"मैं कितनी बार भोंक चुकी हूँ, मगर आप हैं कि कानपर जूँ तक नहीं रेंगती।"

"आखिर माजरा क्या है ? अभीतक तो अच्छी ख़ासी चहकती-फुदकती घूम रही थी, यह यकायक भोंकनेपर उतारू क्यों हो गई।"

"भोंकूँ न तो क्या करूँ ? बारहा कहा कि एक बिल्ली पकड़वा-कर मँगवा दीजिये, मगर आपकी सुनें बला ! मैं कहती हूँ बिल्ली अगर न आई तो दुल्हनको डोलेसे नही उतारूँगी। फिर न कहना कि मुझे जताया तक भी नही और सबके सामने आबरू ख़राब कर दी।"

"अगर तुम इसी तरह भौकती रही तो बिल्ली यहाँ ठहरेगी भी क्यों कर ? विवाह-शादीके मौक़ोंपर लोग-बाग बिल्लीको घरसे भगा देते है और तुम हो कि उसे मँगानेपर बज़िद हो। आख़िर बात क्या है ?"

"बात क्या होती ? कई बार कहा कि औरतोके काममें दस्तन्दाज़ी न दिया कीजिये, मगर आप है कि बाज़ नही आते ! मैं ही क्या अनोखी मँगवा रही हूँ। हमारे ख़ान्दानमें यह रस्म हमेशासे होती चली आ रही है। क्या भूल गये ? जब मैं डोलेसे उतरी थी, तो मेरा मुँह दही-बूरेसे बिटारनेके लिये सासूजीने नादके नीचेसे दही देनेको आपसे कहा था। और जब आपने नाद उघाड़ी तो दहीके बदले वहाँ मरी हुई बिल्ली पड़ी थी।"

"वाह क्या कहने है तुम्हारी इस याददाश्तके ? हम तो क़ायल हो गये तुम्हारे इस बुढ़िया पुराणके। बात तो दरअस्ल यह थी कि बिल्ली नाद के नीचे दही चाटनेको गई और उसके धक्केसे नाद उसीके ऊपर गिर पड़ी। माँको शादीके भीड़-भड़क्केमें देखनेका अवसर न मिला और बिल्ली वहीं दबकर मर गई। अब तुम हो कि उस लकीरकी फ़क़ीर बनी हुई हो।"

"आपको हर बातमें खुरपेच निकालने आते हैं। मगर मैं एक न सुनूँगी, आपको बिल्ली मँगाकर देनी होगी ! मैं तो अपने इकलौते लाल-के विवाहमें वह सब रस्म अदा करूँगी जो मैंने देखी और सुनी है।"

गुड़ खाएँ, गुलगुलोंसे परहेज़

एक कर्मकाण्डी यात्रीको चलते-चलते चमारोंके गाँवमें रात हो गई। भूखके कारण पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे, परन्तु चमारोंके यहाँ खानेको जी न चाहता था। आखिर चमारोंके अनुरोधपर दलिया स्वयं पकाकर खा लेना मंजूर कर लिया। दलिया पकाकर एक लकड़ीकी छीपटीसे खाने लगे तो किसीने पूछा—

"महाराज ! हाथसे न खाकर दलिया छीपटीसे क्यों खा रहे हैं ?"

कर्मकाण्डी गरम होकर वोले—"जाने नाँय है यह चमारनके हाथको पिसो भयो है। याके हाथ लगाकर धरम भ्रष्ट थोड़े ही होनो है ?"

गधा कौन, जौहरी या कुम्हार ?

एक जौहरी जंगलसे गुज़र रहा था कि उसने एक गधेके गलेमें बेशक़ीमत हीरा बँधा हुआ देखा। वह समझ गया कि गधेवाला यह हीरा कही पड़ा पा गया है और इसे चमकीला पत्थर समझकर गधेके गलेमें बाँध दिया है। अतः उसने गधेवालेसे चतुराईसे पूछा—"क्यों बे गधेवाले! इस पत्थरका क्या लेगा?"

"हुजूर जो चाहें दे दीजिये। ग़रीब आदमी हूँ।"

"नही, तू ही बता क्या लेगा।"

"हुज़ूर आठ आने दे दीजिये।"

"आठ आने बहुत है, चार आने लेना है तो यह ले।"

गधेवाला छः आने तकमें देनेको तैयार हो गया, परन्तु जौहरी चार आनेमें ही ख़रीदना चाहता था। वह थोड़ी दूर इस खयालसे आगे बढ़ गया कि गधेवाला झख मारकर उसे चार आनेमें ही लेनेको वापिस बुलायेगा।

जौहरी थोड़ी दूर गया ही था कि एक दूसरा जौहरी उधरसे गुज़रा और वह मुँहमाँगा दाम देकर चलता बना! पहले जौहरीने देखा तो वह झपटकर आया और गधेवालेसे बोला—"क्यों रे वह पत्थर कितनेमें बेंच दिया?"

"हुज़ूर यह देखो एक रुपया उस पत्थरका मिला है।"

"तू बड़ा गधा है। लाखोंका हीरा एक रुपयेमें बेंच दिया।"

"हुज़ूर मै अगर गधा न होता तो उसे पत्थर समझकर गधेके गलेमें क्यों बाँधता? मगर हुज़ूरको क्या कहूँ जो हीरा जानकर पत्थरकी क़ीमतमें भी लेना मुनासिब न समझे?"

ससुरालका नाई

एक बार ससुरालके नाईने आकर सूचना दी कि—"तुम्हारी स्त्री विधवा हो गई है"। सुना तो शेखचिल्लीने आपा पीट लिया। रोनेका शोर सुनकर निठल्ले पड़ोसी इकट्ठे होकर रोनेका कारण पूछने लगे। कारण बतलानेपर हँसते हुए बोले—"अजी तुम भी अजीब आदमी हो, अरे भई जब तुम जीवित हो, तब तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो सकती है"? शेखचिल्लीने कहा "यह तो मैं भी जानता हूँ कि पतिके स्वर्ग गये बगैर स्त्री विधवा नही होती, पर, क्या करूँ? ससुरालका नाई होनेके कारण यह भी तो विश्वासपात्र है, इसकी बातपर भी तो यकीन करना लाज़िमी है।"

ज़िद

एक जाट बोला—"अगर कोई ३५ और ३५ सत्तर गिना दे तो उसे मै अपनी भैंस दे दूँ। जाटनी घबराकर बोली—"अरे वाह! क्या भंग पी ली है? ३५ और ३५ सत्तर तो होते ही है। भैंस दे दोगे तो बाल-बच्चे क्या बड़का दूध पिएँगे?" जाट बोला—"तू घबराती क्यों है? ३५ और ३५ सत्तर होते है यह तो मै भी जानता हूँ, परन्तु मै किसीके सामने हाँ करके दूँगा, तभी न भैंस लेगा! मै तो ना-ना ही करता रहूँगा।"

ठग

एक ठगने किसी हलवाईको ५०० लड्डू बनवानेका आर्डर देकर दूसरे दुकानदारसे २५० रु० का सौदा ख़रीद लिया। सौदा ले चुकनेपर वह बोला—"मेरे साथ आप किसी आदमीको कर दीजिये, ताकि अपने आढ़तीसे रुपये दिलवा दूँ।" दुकानदारने सहजस्वभाव अपना आदमी उसके साथ कर दिया। ठग उस आदमीको हलवाईकी दुकानपर ले जाकर बोला—"२५० इनको गिनकर दे दीजिये और २५० मैं ख़ुद ले जाऊँगा!"

हलवाईके 'बहुत अच्छा' कहनेपर ठग तो चलता बना। जब हलवाई २५० लडडू थालमें लगाकर दुकानदारके आदमीको देने लगा तो वह आदमी भी चक्कर खाया। गरज बहुत कुछ लड़ने-झगड़नेपर समझमें आया कि उस ठगने दोनों ही दुकानदारोंको बेवक़ूफ बनाया।

घरका भेदी

कुल्हाड़ियोंसे भरी हुई गाड़ीको आते देख जंगलके दरख्त रोने लगे! एक बूढ़े दरख्तने रोनेका कारण पूछा तो दरख्तोंने उस गाड़ीकी ओर इशारा करते हुए कहा—

"इनमें भरी हुई कुल्हाड़ियाँ हमें काटकर नष्ट कर देंगी।"

बूढ़ा दरख्त मुस्कराते हुए बोला—"डरो नहीं, इनके साथ बैंटेकी हैसियतमें जब तक हमारा भाई लगा न होगा, यह हमें तिलमात्र भी कष्ट नहीं पहुँचा सकती। यदि रावणका भाई विभीषण रामके साथ, प्रतापका भाई शक्तसिंह अकबरके साथ और पृथ्वीराजका भाई जयचन्द शहाबुद्दीन गोरीके साथ न होता तो उन्हें पराजय देनेकी सामर्थ्य किसमें थी?"

रोगी डाक्टर

एक मनुष्यको नेत्रोंका ऐसा रोग था कि उसे प्रत्येक वस्तु दो-दो दिखाई देती थी। संयोगकी बात कि जिस डाक्टरके पास वह इलाज को पहुँचा, उसे हर चीज चार-चार दिखाई देती थी। डाक्टरने मुसकराकर आनेका सबब पूछा तो रोगीने कहा—"हुजूर हमको हर चीज़ दो-दो दिखाई देती हैं।"

डाक्टरने धीरज बँधाते हुए कहा—"कोई चिन्ताकी बात नहीं, इलाज हो जायगा। क्या तुम चारोंको यही रोग है ?"

रोगी अस्ल हक़ीकत समझ गया। वह माथेपर हाथ मारकर बोला—"धन्य भाग ! मेरी चिन्ता छोड़कर पहले आप अपना इलाज कराएँ।"

पाँचवाँ सवार

देहलीसे चार घुड़सवार लाहौरको जा रहे थे कि लाहौरके नज़दीक पहुँचनेपर एक गधेवाला भी साथ हो लिया। लाहौर पहुँचनेपर किसीने पूछा—

"क्यों भई सवारो, आप लोग कहाँसे चले आ रहे हैं ?"

घुड़सवार मुँह खोलने भी न पाये कि गधेवालेने आगे बढ़कर कहा—"हम पाँचों सवार देहलीसे आ रहे हैं।"

गधेवालेकी इस मूर्खतापर कि वह भी अपनेको सवारोंमें समझता है—सब हँस पड़े। जो आदमी अपनी हैसियत, लियाक़त, ताक़त, वगैरहसे ज़्यादा बढ़कर बात करता है, उसके लिये तभीसे यह मिसाल बन गई है कि "लो भई, ये भी पाँचवें सवारोंमें हैं।"

मरते-मरते भी कुटिलता

छिद्दा बाभन जब मरने लगा तो अपने लड़कोंको बुलाकर बोला—

"तुम लोगोंने मेरा आजतक कभी कोई कहा नहीं माना। आज मैं परलोक जा रहा हूँ। मेरी चिताको आग देनेका उसी लड़केको अधिकार होगा जो मेरी अन्तिम अभिलाषा पूरी करेगा। जो प्रतिज्ञा नही करेगा वह मेरी अर्थीको हाथ भी नही लगा सकेगा ?"

छिद्दा बाभनके गुणों और स्वभावसे जो लड़के परिचित थे, वे तो चुप रहे। परन्तु एक परदेशमें रहनेवाला पुत्र झाँसेमें आकर जवानीके जोशमें अभिलाषा-पूर्त्ति करनेकी प्रतिज्ञा कर बैठा। छिद्दाने उसके कानमे कहा "मेरे मरनेपर मेरी लाशके टुकड़े करके पड़ोसियोके घरोंमें डालकर पुलिसमें रपट लिखा देना कि इन लोगोंने जीतेजी तो मेरे पिताको कष्ट दिये ही, मरनेपर भी शरीरके अंग-अंग काटकर ले गये। मुझे शरीरके छिन्न-भिन्न होनेसे क़तई कष्ट न होगा, वरन् पड़ोसियोंकी जो फ़जीहत होगी, उसकी कल्पना मात्रसे मेरा रोम-रोम पुलकित हो रहा है।

सन्तोषी

नव वर्षकी खुशीमें समस्त क्लर्कोंको वेतन बढ़ाए जानेकी बात कहकर और उनसे बदलेमें खूब धन्यवाद प्राप्त करके साहबने यह मंगल-सूचना जब एक साधारण कर्मचारीको दी, तब वह अत्यन्त नम्र और वीतराग भावसे बोला—

"श्रीमान्की मुझपर अत्यन्त कृपा है, पर वेतन न बढ़ाएँ तो बड़ी दया होगी। वेतन बढ़ते ही खर्च भी बढ़ जायगा। जैसे-तैसे निराकुलतापूर्वक जो जीवन व्यतीत हो रहा है उसमें एक भूचाल आ जायगा।"

धन्यवादका इच्छुक आफ़िसर जो हज़ारों रुपया पानेपर भी तृष्णाकी वैतरणी नदीमें बहा जा रहा था, तिनकेका सहारा पाकर सजग हो उठा।

मुँहके मीठे

एक सज्जनसे दीवालीके अवसरपर कमरेमें झाड़-फानूस टाँगनेके लिये एक साहबने सीढ़ी (नसेनी) माँगी तो बोले—"अरे साहब ! सीढ़ी देनेमें भला क्या एतराज होता ? मगर क्या करें, श्रीमतीजी सन्दूक में बन्द करके ताली अपने साथ पीहर ले गई है।" किसीने उत्सुकतासे पूछा—"अरे भई ! क्या इतनी लम्बी-चौड़ी सीढ़ी भी सन्दूकमें बन्द हो सकती है ?" वे बोले—"तो क्या आपकी रायमें कह देना चाहिए था कि सीढ़ी नहीं देते ? भई हमसे तो इस तरह नटा नहीं जाता।"

लोग समाज-सेवाकी बड़ी-बड़ी बातें बनाते हैं। समाजपर मर-मिटने-के लिये प्रोत्साहन देते हैं। 'यह करो' और 'वह करो' के आदेश देते हैं। मगर जब अवसर पड़नेपर अमल करनेको उनसे कहा जाता है तो इन्कार भी नहीं करते और भलेके भले बने रहते हैं। किस सादगीसे फ़र्माते हैं—

जानसे बढ़के है मज़हबसे मुहब्बत हमको।
क्या करे, कामसे मिलती नहीं फ़ुर्सत हमको ॥

ऐंठकी शान

सास-बहूमें झगड़ा होता तो सास रूठकर बाहर जा बैठती और बहूके मनानेपर घरमें आती। रोजानाके मनानेसे तंग आकर बहू एक रोज़ चुप्पी साध गई। इन्तजार देखते-देखते सासका भी धीरज छूटने लगा। दिनभर भूखी रहनेके अतिरिक्त जाड़ेकी रातमें बाहर पड़े रहनेके ख़यालसे उसका रूठना पानी-पानी होने लगा। वह ऐसा उपाय सोचने लगी कि बाइज्ज़त घरमें प्रवेश किया जा सके और खा-पीकर आरामसे सोया भी जा सके। वह तरकीब सोच ही रही थी कि जंगलसे चरकर भैंस और उसकी पाड़ी घरमे घुसने लगी। चट उसने पाड़ीकी पूँछ पकड़ ली और बड़े नखरे दिखाती हुई, पाँव पटकती हुई, मचलती हुई-सी यह कहते हुए अन्दर चली गई——

"मान जा, मेरी पाड़ी, मै अन्दर नही जानी।" गोया पड़िया उसे जबरन घरमें खीचे ले जा रही थी।

नीलका भैंसा

दिल्लीके चाँदनी चौकमें एक मुहल्लेका नाम नीलका कटरा है। इसके बाहर बहुत-सी दुकानें है। देहातमें कटरा भैंसके बच्चेको भी कहते है। एक बार किसी जाटसे इस मुहल्लेके पासवाले व्यापारीकी जान पहचान हो गई। बातचीतके सिलसिलेमें उसने कहा——"चौधरी! कभी दिल्ली आओ तो नीलके कटरेके पास हमारे यहाँ भी पधारना।"

चौधरी २-३ बरस बाद दिल्ली आया तो उसे उस व्यापारीसे मिलनेका भी ख़याल आया। उसने यह समझकर कि २-३ बरसमें कटरा भैंसा हो गया होगा, नीलके भैंसेका पता पूछा। नीलके भैंसेका पता कौन बताता? आख़िर एक आदमीने कहा—"भई नीलका कटरा तो ये सामने है। नीलके भैंसेका तो हमने नाम भी नही सुना।"

"कटरा तो वह २-३ साल पहले ही था, क्या अभीतक वह भैंसा न हुआ होगा?"

चलते-पुर्जे

एक हलवाईकी दुकानपर अधिक भीड़ देखकर दो चलते-पुर्जोंने इस नादिर मौक़ेसे लाभ उठाना चाहा। एकने जाकर आठ आनेकी मिठाई ली और बाक़ी आठ आनेके पैसे माँगने लगा। हलवाई कहता था, अभी तुमने मुझे रुपया नहीं दिया और वह कहता था, मैंने आते ही रुपया हाथमें दिया है। इसी तरह तू-तू मैं-मैं होने लगी। भीड़ इकट्ठी हो गई तब पासमें ही खड़ा हुआ उसका दूसरा साथी बोला—"मियाँ, लाला! इस गड़बड़में मेरा रुपया न भूल जाना। पहिले मुझे मिठाई तोल दो, बादमें लड़ा करना।"

एक न शुद दो शुद! हलवाईने सोचा अगर इसे भी मना करता हूँ तो ये सारे तमाशायी मेरे ही सिर हो जायँगे और कहेंगे यह सारे झूठ बोलते है, सिर्फ़ तू ही एक सच्चा सोठिया सर्राफ बना है। अतः बात न बढ़े इस गरज़से बोला—"तुम्हारा रुपया खरा, भूल कैसे जाऊँगा?"

इस तरह झगड़ा करके दोनोंने एक रुपयेकी मिठाई तो ले ही ली।

फिर मुझे तो ख़ुदा समझिये

वेश्याओंके साज़िन्दे अक्सर मुसलमान होते हैं और ये मीरासी कहलाते हैं। पुश्तदरपुश्त यही पेशा करते रहनेसे इनकी मीरासी एक जात ही बन गई है। यह कौम मुसल्मानोंमें भी नीच समझी जाती है। पंजाब-में इनसे सम्बन्धित अनेक लतीफ़े मशहूर हैं।

एक दफेकी बात है कि कचहरीमें एक मीरासी गवाही देनेके लिए पेश हुआ। अपना और बापका नाम बता चुकनेके बाद जब न्यायाधीशने उससे क़ौम पूछी तो, यह सोचकर कि "यहाँ मुझे कौन जानता है, मीरासी बताकर कौन अपनेको ज़लील करे--" बड़े ठाटसे अपनी क़ौमियत 'शेख़' बता दी। संयोगसे वहाँ कोई शेख भी मौजूद था। और उसे भी गवाही देनी थी। मीरासीके बाद तुरन्त ही उसकी बारी आ गई। जब उससे क़ौम पूछी गई तो जलकर बोला--"अगर यह कमीन 'मीरासी' अपनेको शेख समझता है तो फिर मुझे तो खुदा समझिये।"

टिकिट बाबूका फूफा

रामू और छोटू जाट रोहतकसे दिल्ली जानेको स्टेशनपर पहुँचे तो छोटूने अपने टिकिटके दाम भी रामूको दे दिये। रामूने पहले अपना टिकिट खरीदा। दोनों टिकिट एक साथ इसलिये नही ख़रीदे कि शायद टिकिटके भावमें कुछ कमती बढ़ती हो जाय, सम्भव है दूसरा टिकिट ही न हो और हिसाबके झंझटमें कौन फँसे ?

जब रामू अपना टिकिट ले चुका तो बाबूसे बोला एक टिकिट छोटूका भी दे दे। बाबू हैरान कि यह छोटू स्टेशन कौन-सा हुआ। जब खयालमें नही आया तो पूछा--"यह छोटू कहाँ है ?"

रामू छोटूकी तरफ़ इशारा करते हुए बोला--"वह खड़ा तेरा फूफा।"

अदालत है या भांड़ोंकी महफ़िल

एक वैश्यका नाम लाला झाऊमल था। वे सूरदास थे और अपने साथ नौकर रखते थे। एक रोज अदालतमें किसी मुकदमेके सिलसिलेमें गये हुए थे। कचहरीमें चपरासीने लालाका नाम लेकर आवाज दी तो इस अटपटे नामको सुनकर जजको हँसी आ गई। और जब लाला उसकी अदालतमें पहुँचे तो जज मजाकन बोला—"भई ख़ूब आदमीका आदमी और ईधनका ईधन"।

जजके इस जुमलेको सुनकर उपस्थित वकील, मुंशी आदि सभी हँस पडे। लालाजी एक ही हाजिरजवाब थे। चट नौकरके मुँहपर एक हलका-सा तमाचा मारते हुए बोले—"क्यो बे मैंने तुझे अदालतमें ले चलनेको कहा था या भाँड़ोकी महफिलमे लानेको कहा था। चल निकाल मुझे यहाँसे।"

लाहौर का पागलख़ाना

लाहौरके पागलख़ानेमें एक साहब मुआयना करने गये तो एक पागलने अपनेको हज़रत मुहम्मद बताया। दर्शक उसकी इस जुरअत और ख़ब्तपर हैरान-सा हो रहा था कि पड़ोसी पागल बोला—"नही यह झूठ बोलता है, मैंने इसे पैग़म्बर बनाके नही भेजा"।

इस्लामधर्मके अनुसार ख़ुदाने हज़रत मुहम्मदको पैग़म्बर बनाकर अरबमें भेजा था। यानी उस दूसरे पागलका भाव यह था कि मैं ही ख़ुदा हूँ और यह मेरा भेजा हुआ नही है।

उचक्का

दिल्लीसे क़रीब ११ मीलकी दूरीपर कुतुब साहब (महरौली) में सन् २० से पूर्व फूलवालोंकी सैर होती थी। यह दिल्लीका सबसे बड़ा और सोफ़ियाना मेला समझा जाता था। ज़रासे गाँवमें लाखोंकी भीड़ होती थी। रंगीन मिजाज, अय्याश, शौक़ीन और तमाशबीनोंका यहाँ जमघट लग जाता था। मंगलामुखी भी अपने-अपने हथियारोंसे सुसज्जित होकर आती थी! गरज़ हर क़ौम, हर मज़हब, हर रंग, हर मिज़ाज और हर तबियतका आदमी इस मेलेमें शरीक होता था। अपने ढंगका यह एक ही मेला होता था। अब तक इस मेलेकी याद रंगीन मिज़ाजों की तबियतको तड़फ़ाये बग़ैर नही रहती। एकबार कांग्रेसके पिकेटिंग करनेसे यह मेला बन्द हो गया था। तबसे प्रायः अबतक बन्द ही है।

उन्हीं दिनोंकी बात है, जब कि चलते हुए खवे-से-खवा छिलता था। एक सज्जन कन्धेपर क़ीमती रूमालनुमा शाल डाले हुए मेलेमें ख़िरामा-ख़िरामा चल रहे थे। रूमालको देखकर एक उचक्केके मुँहमें पानी भर आया। यह हज़रत भी एड़ीसे लेकर चोटी तक ऐन-फैन बने हुए थे। पाँवमें १६-१७ रु० का सलेमशाही जूता, ५ पीके लट्ठेका चूड़ीदार चुस्त पायजामा, शरीरमें चुन्नटदार तनज़ेबका अँगरखा और पट्ठेदार बालोंपर दिल्लीकी बन्धी हुई गोलेदार पगड़ी, आँखोंमें सुरमा लगाये, मुँहमें पान खाये, और हाथमें चाँदीकी मूठकी बेत लिए दो कदममें मुसाफिरके पीछे हो लिए, और आहिस्ता-आहिस्ता पीछेसे उसके शालका एक कोना अपने अँगरखेकी तनीमें बाँध कर और ज़रा झटका देकर हाथके इशारे-से मुसाफिरके रूमालनुमा शालको अपने कन्धेपर डालकर बड़ी ही संजीदगी से बिना किसी हिचकिचाहटके मुसाफिरके बराबरमें ही चलते रहे। कन्धेपरसे रूमाल ग़ायब हुआ तो मुसाफ़िर भौंचक रह गया! इधर-

उधर देखनेपर रूमालका पता क्या ख़ाक लगता ? बराबरमें चलते हुए उचक्केके कन्धेपर पड़ा हुआ रूमाल देखकर भी कहनेकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। ठगकी वेशभूषा और शक्लोशबाहत ही माशाअल्लाह ऐसी थी कि किसीको शक करनेकी भी जुरअत न हो। शालवालेको १-२ मिनट परेशान होते देख, उचक्का खुद ही बोला—

"कहिये हज़रत किस फ़िराक़में है आप ?"

मुसाफ़िर बदहवास था, बोला—"२५०) का शाल अभी कन्धेपरसे किसीने खीच लिया। बेअदबी मुआफ़ ठीक आप जैसा था।"

उचक्का बड़ी संजीदगीसे बोला—"बेशक ज़रूर होगा। मैं भी अगले साल कुछ कमती-बढ़ती इतनेका ही लाया था। भाई यहाँ तो उचक्कोंके मारे नाकमें दम है। इसी वजहसे हमने तो अपना शाल अँगरखेकी तनीमें बाँध रक्खा है, जिससे कोई खीच ही न सके।"

शालवाला बिचारा हाथ मलता रह गया।

गहरे पानी पैठ

उल्लुओंकी नसीहत

मानसरोवरसे एक हंस और हंसनी उड़कर आकाशकी सैरको निकले तो मार्ग भूल गये। इधर-उधर भटकते हुए वे एक ऐसे प्रदेशमें जा निकले जहाँ मनुष्य नही, मनुष्याभास रहते थे। सारा प्रदेश उजाड़ और भयावह बना हुआ था। न वहाँ कोई शीतल सरोवर था, न हरा-भरा वृक्ष। लाचार थके-मांदे हंस हंसनीने शुष्क वृक्षपर ही बसेरा लिया। उसी ठूँठपर कुछ उल्लू भी बैठे हुए थे। उन्हींकी ओर संकेत करके हंस बोला—"प्रिये ! अब मुझे इस प्रदेशके उजाड़ होनेका कारण मालूम हुआ। यह प्रदेश इन उल्लुओंकी कृपासे ही इस दशाको पहुंचा है। जहाँ उल्लू रहते है, वह देश वीरान हो जाता है।"

पतिकी बात सुनकर हंसनीने सम्मतिसूचक सिर हिलाया और उल्लुओ की ओर तनिक भ्रू-निक्षेप करके मुस्करा दी।

उल्लुओंने यह सब सुना और वे चुपचाप दिल थामकर रह गये। सुबह होनेपर युगल जोड़ी उड़नेको उद्यत हुई तो उल्लुओंने हंसनीको पकड़ लिया, और हंससे बोले—"इसे कहाँ लिये जाता है, यह तो हमारी पत्नी है।"

हंसनी चीख़ मारकर रह गयी, हंसने अपना सिर पीट लिया।

उल्लू बोले—"रोने-धोनेसे कोई लाभ नही। इस प्रदेशके मनुष्योंकी पंचायत बुलाये लेते है; उसीका निर्णय हम सबको मान्य होगा।"

अपनी ही वस्तुके स्वामित्वका निर्णय दूसरोसे कराया जाय, हंस यह सुनकर सिहर उठा। फिर भी मरता क्या न करता, चुपचाप स्वीकृति दे दी।

उस ठूँठ वृक्षके नीचे प्रदेश भरके मनुष्य कहे जानेवाले पंचायतमें शरीक हुए। यह प्रश्न गम्भीर था। हंसनी हंसकी बताई जाए या उल्लुओं की, यह ऐसी पेचीदा गुत्थी थी जो सुलझाये न सुलझती थी। पंचोंके चेहरे पृथ्वीकी ओर गड़े हुए थे। सत्य कहते हैं तो अपने यहाँके उल्लू नाराज़ होते है, और इनको नाराज़ करना किसी भी हालतमें ठीक नही। असत्य

निर्णय देते है तो धर्म आड़े आता है। इतनेमें एक वृद्ध बोले–"भाइयो ! प्रश्न कितना गम्भीर और जटिल है यह आप जानते है, फिर भी यदि इसके निर्णयका अधिकार मुझको दें तो मै क्षणभरमें इस समस्याको सुलझा सकता हूँ।"

सब एक स्वरसे बोले—"बेशक चौधरी ! आप ही हमारे सिरमौर है, जो कहोगे वही इस पंचायतका फ़ैसला समझा जायगा।"

तब चौधरी बोले—"देखो भाइयो ! अगर हंसनी हंसकी कहता हूँ तो यह परदेशी लेकर उड़ जायगा, हमारा इससे कुछ भी लाभ न होगा। और उल्लुओंकी कहता हूँ तो हंसनी फिर यही रहेगी, इससे जो बाल-बच्चे होंगे वे हंस ही होंगे। इस तरह यह प्रदेश जो उल्लुओका कहलाता है, धीरे-धीरे हंसोंका कहलाने लगेगा।"

हंसनी उल्लुओंकी सर्व-सम्मतिसे निश्चित हो गई। हंस व्याकुल प्राण लेकर उड़ने लगा तो उल्लुओंने उसे भी पकड़ लिया और बोले—"मूर्ख ! तू जो कहता था कि यह प्रदेश इन उल्लुओने उजाड़ किया है, सो अब बता यह प्रदेश हम उल्लुओंने वीरान किया है या इन ज्ञानके ठेकेदार स्वार्थी मनुष्योंने ?"

हंसने अपनी भूल स्वीकार की, तब हंसनी उसे लौटाते हुए उल्लू बोले—"याद रख ! उल्लुओंसे देशको इतनी हानि नही पहुँचती, जितनी कि स्वार्थी समझदारोंसे पहुँचती है। इन स्वार्थियोंके प्रत्येक श्वासमें ऐसे कीटाणु होते है जो सोनेके संसारको नरक बना देते है। संसारमें ऐसा कोई बीभत्स पाप नही जो स्वार्थी न कर सकें ! संसारमें पापका उद्गम ही स्वार्थ है।"

उल्लुओंकी नसीहत हंस-हंसनीने नतमस्तक होकर सुनी और भूलके लिये क्षमा माँगकर मानसरोवरको चले गये।

रँगा स्यार

मिस्टर स्यारनाथको भूखे मरते हुए जब कई रोज़ हो गये, तब श्रीमती शृगालकुमारीके बहुत कुछ लानत-मलामतके बाद बिचारे शान्तप्रकृति संतोषी जीव जानको हथेलीपर रखकर सिंह और चीतोंकी हृदय दहला देनेवाली दहाड़ सुनते हुए भी भोजनकी तलाशमें निकले और अपनी सनकमें अथवा किसी गीतके स्वर लगानेमें व्यस्त शहरकी ओर जा पहुँचे।

सूर्यके संध्यासे पाणिग्रहण करते ही रजनी काली चादर डालकर सुहागरातके प्रबन्धमें व्यस्त थी। जुगनू सरोंपर हण्डे उठाए इधर-उधर भाग रहे थे। दादुरोंके आशीर्वादात्मक गीत समाप्त भी न हो पाए थे कि क़ुमरीने सरुके वृक्षसे, कोयलने अमुआकी डालसे, बुलबुलने शाखे-गुलसे बधाईके राग छेड़े। श्वानदेव और बैसाखनन्दन अपने मँजे हुए कण्ठसे श्यामकल्याण अलापकर इस शुभ संयोगका समर्थन कर रहे थे, झींगुर देवता सितार बजा रहे थे। कट्टो गिलहरी नाचनेको प्रस्तुत थी, पर रात्रि अधिक हो जानेसे वह तैयार न हुई। फिर भी उलूकखाँ वल्द बूमखाँ अपना खुरासानी और श्रीमती चमगीदड़किशोरी अपना ईरानी नृत्य दिखाकर अजीब समाँ बाँध रहे थे।

एक तो यों ही भूखके कारण पेटमें चूहे कबड्डी खेल रहे थे, इधर यह सब शोरोगुल देखा तो मिस्टर स्यारनाथ मारे क्रोधके बौखलाकर एक रंगरेज़की दुकानमें घुस गये। दुकानमें चरण-कमलोंका रखना था कि श्रीमान्‌जी औंधे मुँह नीलके मटकेमें गिर पड़े। राम-राम करके रात काटी। मारे बू के दिमाग़ सड़ा जाता था। प्रातःकाल रंगरेज़ आया तो हज़रत दम साधके पड़ गये। रंगरेज़ने देखा कि रंगके मटकेमें गीदड़ फँसकर मर गया है, उसने टाँग पकड़कर बाहर निकालकर फेंक दिया।

थोड़ी देर तो मि० स्यारनाथ दम साधे पड़े रहे, फिर कनखियोंसे इधर-उधर देख विद्युत्–गतिसे अपने अरण्य-भवनको प्रस्थान कर दिया।

सूर्यकी प्रखर आभा और समीरकी थपकियाँ खाते ही मि० स्यारनाथ का रंग जो सूखा तो एक विचित्र मन-मोहक आकृति बन गई। स्यारनाथ अपने रूपको देखकर फूले न समाये।

अरण्य-निवासी ठाकुर शेरसिंह, मौलाना बाघहुसैन, पं० भेड़िया-प्रसाद, चौबे भालूदत्त, मिस्टर शूकरनाथ, लाला गैण्डामल, चौधरी मृगलाल, सरदार चीतासिंह, सैयद खरगोशखाँ और श्रीमती लोमड़ीदेवी मिश्राने मिस्टर स्यारनाथका यह जो रंग देखा तो भौचक्के रह गये! हे परमात्मा! ये किस लोकके रहनेवाले विशेष जन्तु हैं। भूलोकमें तो इस शानका कभी देखा न सुना। मालूम होता है यह तो ऊर्ध्व लोकसे ही पधारे हैं।

मि० स्यारनाथ पहले तो अपने पुश्तैनी शत्रुओंको देखकर भयभीत हुए। पर उन्हें स्वयं हक्काबक्का देखकर वास्तविक बात ताड़ गये। इस स्वर्ण अवसरको खो देना उन्होंने मूर्खता समझा। अतः उन्होने बड़ी संजीदगीके साथ उन सबको इशारेसे बुलाया और इशारे ही इशारेमें समझा दिया कि ईश्वरने मुझे अरण्य-चक्रवर्त्ती बनाकर भेजा है। आजसे सबको मेरी आज्ञा शिरोधार्य करनी होगी और मेरे रहन-सहन, भोजन आदिका राज्योचित प्रबन्ध करना होगा!" सबने दुम दबाकर आधीनता स्वीकार की।

थोड़े दिन तो खूब चैनकी बंसी बजी। बैठे-बिठाये नित नये भोज्य पदार्थ आने लगे। मिस्टर स्यारनाथ भाग्यका ऐसा परिवर्त्तन देख मूर्ख पशुओं पर मन ही मन हँसते और अपने चातुर्य्य और साहसकी चिरंजीव जम्बुक-कुमार और श्रीमती शृगालकुमारीसे ख़ूब ही प्रशंसा करते।

पर, 'सब दिन होत न एक समान।' वर्षा ऋतु आई और स्यारनाथ-का बाह्य रूप धुल गया। अरण्य-वासियोंने देखा कि चक्रवर्तीकी आकृति तो गीदड़ रूपमें होती जा रही है। उन्हें अपने चक्रवर्त्तीकी आकृतिके इस

तरह परिवर्त्तन हो जानेसे आश्चर्य हो ही रहा था कि दूसरे गीदड़ोंके रोने की आवाज सुनकर संस्कारके वशीभूत स्यारनाथ भी मुँह ऊँचा करके हू-हू पुकारने लगे। मुँह खोलते ही सारा भेद खुल गया। नाहरख़ाँने जो तमाँचा मारा तो स्यारनाथके प्राण-पखेरू उड़ गये।

नंगा क्या पहने, क्या रक्खे ?

एक देहाती दिल्ली आया तो फ़तहपुरीपर ट्रंकोंकी दुकानोको निहारने लगा। दुकानदारने गाहक समझकर उसे अन्दर ले जाकर सभी क़िस्मके सन्दूक़ दिखाये और भाव बताये। दुकानमें चारों तरफ फिरकर जाट जब जाने लगा तो दुकानदारने टोका—

"चौधरी ! सन्दूक़ नही लेगा ?"

"के करूँगा ?"

"लत्ते रखना।"

"लत्ते इसमें रखूगा तो फिर पहनूँगा तेरी ऐसी-तैसी ?"

अनधिकारी वक्ता

पण्डित गंगादीन पाण्डे पढ़े-लिखे वाजिबी ही वाजिबी थे, पर थे जहीन। जमुनाजीकी सीढ़ियोंपर बुहारी लगाते हुए उन्हें गंगालहरी, विष्णु-सहस्रनाम और हनुमानचालीसा कण्ठस्थ हो गये थे। कनागतोंमें न्योता जीमते-जीमते सत्यनारायणकी कथा कहना सीख ली थी और व्याह-बारातों-में निरन्तर जाते रहनेसे पाणिग्रहण-संस्कार भी कराने लगे थे।

इतनी उन्नति कर लेनेपर भी भाग्य उनके प्रतिकूल ही बना रहा। पण्डित गंगादीन-जैसे सरस्वती-उपासकके ऊपर उलूक-वाहिनी लक्ष्मीकी सदैव कोपदृष्टि रही। बारहमासी प्याऊपर पानी पिलाने, शिवालयमें और जमुनाकी सीढियोंपर बुहारी लगाने और स्नान करनेवालोंको चन्दन घिसकर देने आदिमें कुल मिलाकर १२ रु० माहवारकी औसत पड़ती थी। घरमें कई प्राणी थे। इतने रुपयोंका तो सूखा अनाज ही चाहिए। उसपर तुर्रा यह कि पाण्डेजी दो आने रोज़ चिनिया बेगम (अफ़ीम) के लिए और दो आने रोज़ दूधके लिए ज़रूर रखना चाहते थे। ऐसी हालतमें सारे परिवारको महिनेमें कईबार निर्जला एकादशीके व्रतका पुण्य अनायास ही प्राप्त हो जाता था।

इन आये दिनोंकी निर्जला एकादशीके व्रतोंसे ऊबकर पण्डित गंगा-दीन पाण्डेने अपनी आजीविका बढ़ानेके अनेक उपाय किये, परन्तु सब बेकार। उनके हृदयमें एक यही सन्ताप था कि संसारके भोले प्राणी गुणियोंको क्यों नहीं पहिचानते? बहुत कुछ सोच विचारके बाद पाण्डेजी-ने कथा बाँचकर आजीविका-उपार्जनका निश्चय किया।

पण्डित गंगादीन शुभ लग्न-मुहूर्त देखकर सरेआम पीपलके पेड़के नीचे कथा कहने बैठे। उनके कथानक और वक्तृत्व-शक्तिमें कुछ ऐसी मोहकता थी कि श्रोता मारे आनन्दके ऊँघने लगे। यहाँ तक कि उनके

दाएँ-बाएँ बैठे हुए दो श्रोता तो इतने निमग्न हुए कि उनका शरीर ही शरीर कथा श्रवण करनेको रह गया और प्राण सुख-स्वप्न देखने लगे। उन दोनोंमें एक कपड़ेका और दूसरा अनाजका व्यापारी था। कपड़ेके व्यापारीने स्वप्नमें देखा कि दुकानपर ग्राहक खड़ा हुआ लट्ठा देख रहा है। भाव पूछनेपर बजाज़ने दस आने गज बतलाया, पर ग्राहक छः आने गज़ माँगने लगा। आख़िर बहुत ही हुज़्जतके बाद कपड़ेका व्यापारी बोला——

"अच्छा न तेरे छः आने और न मेरे दस आने। बस आठ आनेमें फ़ैसला हुआ," यह कहते हुए लट्ठेको फाड़नेके लिए कपड़ेके व्यापारी श्रोताने जो हाथ बढ़ाया तो पाण्डेजीकी कथा-पोथीके पन्ने हाथमें आगये और वे बीचमें से चट दो कर दिये गये।

कपड़ेके व्यापारी इधर लट्ठा समझकर पाण्डेजीके पोथी-पत्रा फाड़ रहे थे, उधर उसी समय अनाजके व्यापारीने स्वप्नमें बिजारको अपनी दुकानका अनाज खाते देखा तो चट डण्डा उठाकर पांडेजीपर बिजारके भुलावेमें दनादन फटकारने लगा और शोर मचाने लगा——"क्या तेरे लिए ही यह अनाजकी ढेरी लगाई थी।"

पंडित गंगादीन पांडेने अपनी और पोथी-पत्रेकी यह दुर्गति देखी तो जान बचाकर ताबड़तोड़ भागे और फिर उनकी नानी मरे जो कभी बग़ैर पढ़े-लिखे होते हुए कथा बाँचने या उपदेश देनेका दुस्साहस किया हो।

लालची साधु

छज्जू जाट अपने खेतके मचानपर बैठा हुआ हुक़्क़ा पी रहा था कि उसके कानमें खन-खनकी आवाज़ आई। आवाज़की सीधपर छज्जूने जाकर देखा तो उसके मुँहमें पानी भर आया। एक गेरुआ वस्त्रधारी साधु बड़ी सावधानीसे सौ रुपये गिनकर अपने सरके साफ़ेमें बाँध रहा था। रुपयोंको देखकर छज्जू जाटका जी तो काफ़ी मचला, पर करता क्या? लाचार मुँह लटकाए, दबे पाँव अपने खेतमें लौट आया।

छज्जू जाट अपने मचानपर बैठा हुआ इस श्वेत वर्णधारी कलयुगी अवतारके ध्यानमें निमग्न था कि "जय बम भोले" की आवाज़ सुनकर चौंक पड़ा। देखा तो वही साधु याचनाके भावसे सन्मुख खड़ा हुआ था। छज्जू जाट साधुकी इस हरकतसे कुछ कुढ़-सा गया। उसने सोचा—"खड़ी फ़सलको टिड्डी चाट गईं, महाजनने क़र्जमें बैल खुलवा लिये, भरे हुए अन्नको लगानवाले उठा ले गये, फिर बहनको भात और लड़कीको छूचक देना है और पास फूटी कौड़ी नही है, फिर भी सब्र किए बैठा हूँ। और एक यह सण्ड-मुसण्ड है कि किसी बातका फ़िक्र नही, सौ रुपये गाँठमें लिए फिरता है फिर भी माँगनेकी हविस बनी हुई है। इसे कुछ नसीहत देनी ही चाहिए"—यह सोचते हुए उसे एक जट-विद्या सूझ आई।

छज्जू जाट अपने मचानसे उतरकर बहुत दीनतापूर्वक नमस्कार करते हुए बोला—"महाराज! धन्नभाग जो तुम पधारे, मेरे ऐसे नसीब कहाँ? दो रोज़से जाटनी भूखी बैठी है, उसकी ज़िद है कि जबतक किसी पहुँचे हुए महात्माको न जिमा लूगी भोजन न करूँगी। गाँवके इर्दगिर्द चार-चार पाँच-पाँच कोस तक खोज फिरे पर कोई महात्मा नही मिला, यूँ भुखमरे सैकड़ों। मेरे पूरवले पुन्न कर्मोसे ही भगवान्ने तुम्हें भेजा है।"

साधु महाराजने अपनी अपूर्व आव-भगत देखी तो फूले न समाये।

शिकार फँसता हुआ देख छज्जू जाट बोला—"तो, महाराज ! आजका न्योता क़बूल करो, बड़ी कृपा होगी ।"

साधु महाराजको भोजनकी इच्छा तो थी नहीं, भोजन तो वह पहले ही कही टाँक आये थे । वह तो नक़द नारायणके इच्छुक थे । बोले—"बेटा ! भोजन तो हफ़्तेमें हम एकाधबार ही करते हैं, अगर कुछ नशेपानी का प्रबन्ध कर सको तो. . . .!"

छज्जू जाट साधुके मनोभाव ताड़ गया, बीच ही में बात काटकर बोला—"दीनबन्धु ! भोजनके साथ एक रुपया दच्छिना भी हाथ जोड़कर दूँगा । आप मुझे निराश न करें ।"

साधु महाराजने दक्षिणाका नाम सुना तो बाँछें खिल गई । बोले—"भैया ! आजतक तो हमने कभी किसीके यहाँ जीमना स्वीकार किया नहीं, पर आज तेरे कारन हम अपनी आन छोड़ते है, क्या करें लाचारी है, भगवान् भगतके बसमें होते आये ।"

साधु महाराजने दूध, रबड़ी, खीर, हलुआ, उदर-मध्य रख लेनेके बाद जाट और जाटनीको अनेक आशीर्वाद दिये । भर पेट आशीर्वाद ले चुकनेके बाद छज्जू जाट अपनी स्त्रीसे बोला—"जा, रुपया-नारियल साधु महाराजके चरणोंमें चढ़ाकर अपने जनमको सार्थक करले ।"

जाटनी खुशी-ख़ुशी अन्दर गई और फिर बाहर आकर बोली—"अन्दर हाँडीमें तो रुपये नही है ।"

छज्जू जाट आँखें तरेरकर बोला—"हैं, रुपए नही है, कहाँ गये, अभी-अभी तो १००) गिनकर मैंने हाँडीमें रक्खे थे ।"

जाटनी सरल स्वभाव बोली—"तो मै क्या जानूँ ? जहाँ तुमने रक्खे हों, वहाँ देख लो मुझे तो मिले नहीं ।"

छज्जू जाट लपककर अन्दर गया और तनिक इधर-उधर देख भालकर माथा पकड़े हुए बाहर आया और "हाय मै लुट गया, बर्बाद हो गया"—कह कर ज़ोर-ज़ोरसे रोने लगा । रोनेकी आवाज़ सुनी तो अड़ोसी-पड़ोसी इकट्ठे

होकर रोनेका कारण पूछने लगे। बमुश्किल छज्जूने बतलाया कि महाजनसे अपने बैल वापिस लानेके लिए थोड़ी देर पहले हाँडीमें १०० रु० गिनकर रक्खे थे। अब जो साधु महाराजको एक रुपया दक्षिणा देनेके लिये देखा तो उसमें फूटी कौड़ी भी नही।

पड़ोसी छज्जूकी ग़रीबीके कारण सहानुभूति रखते थे। सुना तो सन्न रह गये। सबके सब एक स्वरमें बोले—"क्या कोई बाहरका आदमी घरमें गया था।"

छज्जू जाट उसी तरह मुँह लटकाये बोला—"बाहरका आदमी कौन आता? बाबाजी, जाटनी और मेरे सिवाय आज यहाँ सुबहसे चिड़िया तक नहीं फटकी।"

पड़ोसी बोले—"तो भैया! घबड़ाओ मत। तनिक इस साधुकी तलाशी तो लो। इस भेषमें सैकड़ों उठाईगीरे चोर-उचक्के फिरते है।"

छज्जू जाट गिड़गिड़ाकर बोला—"भाई, ऐसा मत कहो, पाप लगता है। ये साधु तो बड़े भारी महात्मा हैं। मेरे बहुत रिरयानेपर न्योता जीमनेको तैयार हुए थे।"

पड़ोसी तिनककर बोले—"ऐसे सैकड़ों महात्मा जूतियाँ चटकाते फिरते हैं। दिनमें ये लोग भीख माँगते है और रातको चोरी करते है। अच्छा, तू न ले तलाशी, हम लिए लेते है। पाप भी लगेगा तो कुछ चिन्ता नहीं। दो-चार रोज़ नरकमें रह आवेंगे।"

इतना कहकर पड़ोसियोंने साधुकी जेब, अण्टी आदि सब देख डाली, पर रुपये न मिले। छज्जूने देखा कि सिरके साफ़ेको किसीने नही देखा। अतः माथेपर हाथ मारकर बोला—बसजी, जो होना था सो हो गया, अब महाराजके साफ़ेको तो न उतारो।

छज्जू बात पूरी कहने भी न पाया कि एक जल्दबाज़ने महाराजके साफ़ेमें जो झटका दिया तो रुपये खन-खन बिखर गये। पड़ोसियोंने जल्दी-जल्दी सब रुपये हाँडीमें भर दिये। लालची साधु अपना-सा मुँह लेकर

जब जाने लगा तो छज्जू जाटने पाँवोंकी रज अपने मस्तकपर लगाते हुए कहा––"तो महाराज, अब कब दर्शन दीजियेगा।"

लालची साधु नीची नज़र किये हुए बोला––"जब १०० रु० इकट्ठे हो जाएँगे।"

बच्चे पीछेसे तालियाँ बजाकर चिल्लाये––

लोभ पापका बाप बखाना।

पाँच रुपयेकी अक्ल

जुम्मन नाईके फ़िज़ूलख़र्च होनेके सबब उसकी बीवी अल्लारक्खी बड़ी परेशान थी। घरमें भुनी भाँग नही, पर जुम्मनके यहाँ एक-न एक मेहमान बना ही रहता था। जुम्मन ख़ुद इस मुसीबतसे नजात पाना चाहता था, पर करता क्या? आदतसे लाचार था। बी अल्लारक्खी-की रात-दिन जली-कटी बातें सुनते-सुनते जुम्मनके नाकोंदम आ गया। तब कही राम-राम करके उसने पाँच रुपये जोड़कर अपनी बीवीको दिये। पाँच रुपये पाकर बी अल्लारक्खी फूली न समाई। मारे ख़ुशीके उसके ज़मीनपर पाँव नही पड़ते थे। वह इस मुबारिक दिनके लिए अल्लाहमियाँका लाख-लाख शुक्रिया अदा कर रही थी कि जुम्मन नाई बाहरसे हाँफता हुआ आया और बोला——

"जल्दी कर, वह रुपये कहाँ है? जल्दी निकाल, मै बाज़ारसे सौदा-सुलफ़ लाऊँ और तू..."

रुपयोंके देनेका हुक्म सुनते ही बी अल्लारक्खीके शरीरपर मानों चिनगारी गिर पड़ी। वह बीच ही में बात काटकर बोली——

"आख़िर इस बौखलाहटकी कुछ वजह भी?"

"अरे वाह! यहाँ उस्ताद आये है और तुझे बौखलाहट दिखाई देती है।" जुम्मन ज़रा आँखें तरेरकर बोला।

"उस्ताद आये है तो क्या हुआ? कोई नई बात तो है नही, यहाँ तो रोज़ ही एक न एक भुखमरा पड़ा रहता है।" बी अल्लारक्खी फिर ज़रा आँखें मटकाकर बोली——"दुतकार क्यों नही देते? भूखों मरकर कब तक मेहमाँनवाज़ी करोगे! 'तन पै नहीं लत्ता पान खाएँ अलबत्ता'। कुछ गाँठकी भी अक्ल है या उम्रभर चोंच ही बने रहोगे?"

जुम्मन ज़रा मुस्कराकर बोला——"लो चुड़ैलकी बातें, हमें चोच समझती है! तीतर, कबूतर, बटेर लड़ाना हम जानें, पतंग उड़ाना

हम जानें, मर्सिये गाना हम जानें, ग़रज़ हरफ़नमें उस्ताद है, फिर भी कहती है--क्या उम्र भर चोंच बने रहोगे ? अरे हमने तो वो-वो सुहबतें की हैं कि फरिश्ते भी आकर अक़्ल सीखें ।"

बी अल्लारक्खी हँसीको जब्त करते हुए बोली--"बेशक, मुझसे ग़लती हुई । आख़िर मैं भी तो सुनूँ आज कौन साहब तशरीफ़ लाये हैं, जिनके लिये..."

मियाँ जुम्मन बीचमें ही बात काटकर बोले--"अरे, क्या तू आज भी ऐसा-वैसा मेहमान आया हुआ समझती है ? आज मेरे उस्ताद आये है, उस्ताद ! इन्हीकी बदौलत तीतरबाजी, पतंगबाज़ीका इल्म हासिल हुआ है । खुदा-क़सम, अपने फ़नमें यकतां है । विलात, इंग्लैड, बम्बई, हिन्दुस्तान, लाहौर, पंजाब, कलकत्ता, बंगाल, दूर-दूरमें सरनाम हैं । इनकी जूतियोंकी कोई हिरस तो करले ।"

बी अल्लारक्खी जुम्मनकी इन शेख़चिल्ली वाली बातोंसे रही सही और भी जल-भुन गई । तनककर बोली--"तभी तो सासजी कहा करती थी "मेरे ललाके तीन यार, धोबी, तेली और मनिहार" । पतंगबाज़, तीतरबाज़ ही उस्ताद हुए, या कभी किसी गुणीके पास भी बैठे ?"

जुम्मन कोई और रोजकी तरह निखट्टू तो था ही नही, जो चुपचाप खडे-खड़े सुना करता ? आज ही तो उसने चमकते हुए पाँच रुपये बी अल्लारक्खीको लाकर दिये थे, फिर क्यों किसीकी जली-कटी सुनता । वह दाँत किटकिटाकर बोला--

"रुपये निकालती है सीधी तरहसे, या जमाऊँ सुसरीके लात ?"

बी अल्लारक्खी पिटनेकी आवश्यकतासे अधिक आदी बन चुकी थी, मगर न मालूम उसे क्या सूझ पड़ी । सिरको नचाती हुई बोली--"ऐ वाह ! तुम तो ख़फ़ा हो गये जो ज़रा-सा मैंने हँसी-हँसीमें छेड़ दिया तो, लो यह एक पैसा, इसका तम्बाकू लाकर उन्हें जरा हुक्का तो पिलाओ, इतने में खोदकर रुपये निकालती हूँ ।"

जुम्मन इठलाता हुआ तम्बाकू लेने चला गया।

निर्धनतामें रही-सही गाँठकी अक़्ल भी चली जाती है, पर साहूकारी में बुद्धू होते हुए भी अक़्ल हाथ बाँधे खड़ी रहती है। बी अल्लारक्खीके पास भी आज पाँच रुपयेकी तरावट थी, चट उसे भी पाँच रुपये वाली अक़्ल सूझ गई। वह परदेकी आड़मेंसे जुम्मनके उस्तादसे रोनी आवाज़में बोली—"खुदाके वास्ते तुम्ही अपने शागिर्दको नेक राहपर लाओ, मुझ दुखिया पर करम होगा, अगर आपने उसे अल्लाहतालाके अजाबसे बचाया।"

"ऐसी क्या बात है ? आख़िर कुछ माजरा भी तो सुनूँ।" उस्तादजी ज़रा बड़प्पनके साथ बोले।

बी अल्लारक्खी जरा गिड़गिड़ाकर बोली—"निगोड़ी कुछ बात भी हो। कहूँ तो घरकी साख जाय, न कहूँ तो बदनामी, मेरी सब तरहसे मुश्किल।"

उस्तादजी जरा अपनी कूचीदार दाढीपर हाथ फेरते हुए बोले—"नही, बेटी ! हमसे क्या छिपाव, हम तो घरके-से आदमी है। अपने ससुर और बापकी तरह मुझको भी समझ।"

"ससुर और बाप तो समझाते-समझाते मर गये, पर इनके एक नहीं लगी। खुदा जाने किस मरदूदसे यह कुलच्छन सीखे है।" बी अल्लारक्खी और ज़रा मचलकर बोली।

"बेटी, तू मेरा मरे हुएका ही मुँह देखे, जो हमसे न कहे।" उस्तादजीने ज़रा बुज़ुर्गाना लहजेमें कहा।

बी अल्लारक्खी निशाना ठीक लगते देख बोली—"लो, जब क़सम दिलादी तो मजबूरन कहना ही पड़ा कि जरा अपने शागिर्दसे चौकन्ने रहना। ये पहले तो आये-गयेकी खूब ख़ातिर-तवाज़ा करते है और न मालूम फिर क्यों चाहे जिसके नाक-कान कतर लेते है। खुदाकी पनाह, न जाने यह रोग इन्हें क्योंकर लग गया ? मैं तो सारी रिश्तेदारियोंमें बदनाम हो

गई। अच्छे मियाँ, कोई आसेब-वासेबका तो परछावाँ नहीं है। ज़रा देखना, मैं तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ।"

इतना कहकर बी अल्लारक्खी तो परदेके पाससे खिसक आई। उधर उस्तादजीके पेटमें चूहे कबड्डी खेलने लगे। अजीब दुविधामें जान थी। "रहें या चलते बनें? चलते क्यों बनें? आख़िर अपना शागिर्द है, क्या मुझीसे यह शरारत करेगा? कर भी दे तो क्या ताज्जुब? बावला कुत्ता कब अपना-पराया देखता है, उसकी जरा-सी बात होगी और यहाँ उम्र भरको नकटे-बूचे हो जाएँगे। सात शुबरातकी झाड़ू और हुक़्के-का पानी ऐसी मेहमाँनवाजीपर।

इसी तरह न मालूम क्या-क्या ऊँच-नीच सोचते हुए खूँटेसे बँधी अपनी टट्टुवानी खोलकर चलते बने। जुम्मन नाई खससे मढ़े हुए हुक़्केको लखनवी तम्बाक़ूसे मुअत्तर करके लाया तो उस्तादजीको न पाकर बीवीसे पूछा—"उस्ताद कहाँ गये?"

बी अल्लारक्खी मुँह बिचकाकर बोली—"ऐ वाह, अच्छे उस्तादजीको लाये, शर्म न लिहाज, निगोड़ा कहते भी न लजाया।"

जुम्मन घबराकर बोला—"ऐं! आख़िर क्या हुआ?"

बी अल्लारक्खीने मटककर कहा—"होता क्या? नासपीटा बोला, ज़रा पेटीमेंसे उस्तरा निकाल दो। मैंने हाथके इशारेसे मना कर दिया। बस इतनी-सी बातपर मुझे और तुम्हें गालियाँ बकता हुआ टट्टुवानीपर लदकर चलता बना।"

जुम्मन दाँत किचकिचाकर बोला—"अरे तो बेवक़ूफ़की बच्ची! इसमें शर्म और लिहाज़की क्या बात थी? दे क्यों नही दिया? एक उस्तरा क्या, उनके ऊपर सैकड़ों उस्तरे निछावर कर दूँ।"

इतना कहकर जुम्मन पेटीमेंसे उस्तरा निकालकर और उसे खोलकर उस्तादजीको मनानेके लिए दौड़ा। उस्तादजीने मुड़कर देखा कि जुम्मन उस्तरा लिए हुए आ रहा है तो उसे बी अल्लारक्खीकी बातका पूरा यक़ीन

हो गया। उन्होंने अपनी टटुवानीको और भी तेज कर दिया। उस्ताद-जीकी टटुआनी दौड़ते देख जुम्मन उस्तरा दिखाकर चिल्लाने लगा—"उस्ताद, जरा बात तो सुनो" पर उस्ताद किसकी सुनते थे ? उन्हें अपने नाक-कानकी फिक्र लगी हुई थी ! आख़िर जुम्मन लाचार मुँह लटकाये घर आ गया। जुम्मन उदास था और अल्लारक्खी खुश। आख़िर वह नाक-कान कतरनेवाली बातकी ऐसी शोहरत हुई कि फिर किसी आवारा मेहमानकी जुम्मनके यहाँ आनेकी हिम्मत न हुई।

गपोड़शंख

एक नवाबसाहबको झूठ बोलनेका रोग था। अपने पतिकी इस बीमारी से बिचारी बेगम बड़ी परेशान थी। हर एक बातकी हद होती है, पर नवाबके गप्प उड़ानेकी कोई हद न थी। शहर भरमें वह गपोड़शंखके नामसे मशहूर थे। और सच बात तो यह है कि उन्होंने शायद ही कभी अपने जीवनमें सच बोला हो। नवाबसाहब रुपये-पैसेवाले आदमी थे, इसलिये उनके खुशामदियोंकी भी कमी न थी। वे लोग झूठे बढ़ावे दे-देकर उन्हें बाढ़पर चढ़ाये रखते थे।

एक रोज यारोंका मजमा लगा हुआ था, मुन्शी बदहवासराय, शेख़ चिरागअली, मियाँ गुलखैरू क़रीनेसे बैठे हुए नवाबसाहबके सामने दूनकी हाँक रहे थे कि मियाँ गुलखैरू जम्हाई लेते हुए और चुटकी बजाते हुए नवाब साहबकी तरफ मुख़ातिब होकर बोले––"हुजूर आज तो कोई नई बात सुनाइए।"

फ़र्माइशकी देर थी कि गपोड़शंख बेकसीके स्वरमें बोले–"यार, क्या नई बात सुनाएँ! हम तो बदक़िस्मत हैं जो हिंदोस्तान-जैसे नाक़दरे देशमें पैदा हुए। अगर विलायतमें हुए होते तो इल्मकसम किसी बादशाहके नज़दीक कुर्सी मिली होती। बदहवासराय गपोड़शंखकी हाँ में हाँ मिलाते

बहुतसे मनुष्य मनोविनोद, मान प्रतिष्ठा, बातको छुपाने, व्यापार-लाभ आदिके लिए झूठ बोलते हैं। स्वार्थ-साधनके लिए भी झूठ बोलना पाप है, क्योंकि पाप आखिर पाप है। पर बहुतसे मनुष्य ऐसे हैं जो अकारण ही झूठ बोलते रहते हैं। वे जानते हैं कि हमें लोग झूठा समझते हैं, फिर भी वे झूठ बोलना नहीं छोड़ते। ऐसी ही झूठकी बीमारीसे ग्रसित कुछ मनुष्योंकी झाँकी इस कहानीमें मिलेगी।

हुए बोला—"बेशक, इसमें क्या शक है ? वहाँ तो कहते हैं, आप-जैसे जहीन इन्सानका जीते जी दिमाग़ ख़रीदकर अजायब घरमें रख देते है ।"

गपोड़शंख इस मीठे मज़ाक़को न समझकर मारे आत्म-गौरवके शेखीमें आकर बोले—यारो, कलकी बात तो सुनो—

हम अपने मुश्की घोड़ेपर चढ़कर कल शिकारको गये, तो आँधीने वह ज़ोर पकड़ा कि हाथको हाथ दिखाई न देता था । हमने जो ग़लतीसे घोड़ेको हंटर लगा दिया, तो बस गरम हो गया । लगा हिरनकी तरह चौकड़ियाँ भरने । हम लाख उसके रोकनेकी कोशिश करते थे, मगर वह किसकी सुनता था ?

बदहवासराय—तो हज़ूर आपने भी तो गज़ब कर दिया । मुश्कीको हंटरकी बर्दाश्त कहाँ ? वह तो कुश्तएकालीन खाकर और शर्बतेशबनम पीकर इतना बड़ा हुआ है । उसने जो लाड़-प्यारकी ज़िन्दगी बसर की है, वह किसी नवाबको मयस्सर नहीं । बड़े हुज़ूरके छूचकमें हुज़ूरकी दादी साहबा उसे अपने मैकेसे लाई थी । कुत्ते-जैसे क़दसे माशाअल्लाह वह इसी घरमें इतना बड़ा हुआ है ।

चिराग़अली—मुश्की घोड़ेके क्या कहने ! दूर-दूरमें अपना सानी नही रखता । नाज़ुक मिज़ाज इतना कि ख़ुदाकी पनाह ! उस रोज़ घासका गट्ठर लिए हुए हज़रत झेरेमें गिर पड़े, तो दो रोज़ तक उठनेका नाम नहीं लिया । वह तो कहिये ख़ैरियत हुई, जो मनाने-पुचकारनेसे उठ आये, वरना गज़ब ही हो जाता ।

गुलख़ैरू—अमाँ, मुश्की घोड़ेकी हर एक चीज़ लाजवाब, उसकी सारी आदतोंमें बाँकपन ! उसकी हिनहिनाहट कोयलकी बोलती बन्द करे, रूप उसका सब्ज़परीको भी शरमाए, उसकी पसलीकी उभरी हुई हड्डियाँ चम्पेकी कलियोंको दूर बिठायें, अन्दरको घुसी हुई छोटी और गोल आंखें कबूतरको भी नीचा दिखायें और उसकी ख़िरामाँ-ख़िरामाँ चाल,

लखनऊके नवाब, वाजिदअलीशाहसे भी शोख़ी भरी ! परमात्मा झूठ न बुलाये, हुजूरके मुश्की घोड़ेकी हिर्स काबुली गधा तो करले ?

बदहवासराय——(बीच ही में बात काटकर)——यार, हो तुम निरे चोंच ही । श्यामकल्यान गाते-गाते यह भैरवीकी तान क्यों छेड़ दी ? मुश्की घोड़ेसे और काबुली गधेसे क्या निस्बत ? सच कहते है मजलिसे-इल्ममें ऐरे-गैरोंको नही बैठने देना चाहिए ।

गपोड़शंख——भाई, इसपर क्यों खफ़ा होते हो । यह भी किसी हद तक ठीक ही कहता है । पहले काबुली गधे शाह ईरानकी सवारीमें रहते थे ।

गपोड़शंखका इतना कहना था कि चारो तरफ़से ख़ूब ! ख़ूबकी बौछारें होने लगी । वल्लाह ! कैसा मीठा फ़िक़रा है ? ग़ुलामके क़ुसूरको वफ़ादारीमें शामिल करना, इसे कहते है——ग़रीबपरवरी ! किसी शायरने ख़ूब फ़रमाया है——

"जो बात की ख़ुदाकी क़सम लाजवाब की ।"

"हाँ, तो हुज़ूर ! फिर क्या हुआ ?"

गपोड़शंखको पलभर पहलेकी बात याद नही रहती । वह इस चक्करमें पड़े कि अब मै क्या कहूँ, न मालूम क्या कह रहा था । इस बातको गुलख़ैरू ताड़ गये । उन्हें खुद नही मालूम कि कौन क्या बक रहा है, जल्दीमें बोल उठे——"जी फिर उस बैंगनका क्या हुआ ?"

चिराग़अली——यार, तुम भी हो निरे ख़ुश्के । बेगुन आदमी भी कोई आदमी है । फिर भला उसका यहाँ गुनियोंकी महफ़िलमें ज़िक्र ही क्या ?

गपोड़शंख——क्योंजी, मियां गुलख़ैरू, तुम्हें इन्होंने ख़ुश्का किस लुग़ात (शब्दकोश) की रूसे कहा ?

गुलख़ैरू——हज़ूर, मेरी पैदाइश, खुश्क़ा शहरकी है इसलिये मुझे यह लोग इस प्यारे नामसे पुकारते है ।

गपोड़शंख—भाई, यह ख़ुश्का कौन-सा शहर हुआ, यह नाम तो आज ही सुना।

ख़ुश्का किस बलाका नाम है, वह स्वयं नही जानता, फिर गपोड़शंख-को क्या खाक बताता। फिर भी दात निपोरकर बोला- वाह हुजूर, वाह! गुलामके सामने नादान बनकर उसका हौसला बढ़ा रहे है। बन्दानवाज! यूँ चीटीपर पसेरी डालकर उसे अहसानसे इतना न दबाएँ कि वह निकल ही न सके।"

बदहवासराय—वाह, मै सदक़े जाऊँ हुजूरके इस भोलेपनपर—

इस सादगी पै कौन न मर जाय ए खुदा!

लड़ते है और हाथमें तलवार भी नही!

अच्छा साहब, आपको भोलापन मुबारिक, लो हमी बताये देते है। यह उसी खुरासान शहरका मुखफ़्फ़फ़ (संक्षिप्त रूप) है, जहाँ मै हुज़ूरके हमराह बारातमें गया था। वल्लाह! कैसा सुहावना पहाड़ी मुल्क था कि तबियत हरी हो गई।

यकायक गपोड़शंखको अपनी बात स्मरण हो आई। बोले—"वाह यारो, कहाँकी बात कहॉ ले उड़े कि अस्ल मज़मून ही ख़ब्त कर दिया। अच्छा, अब कोई साहब बीचमें न बोलें। हाँ, तो मुश्की घोड़ा चाबुक लगते ही हवासे बातें करने लगा। नदी, नाले, कुआँ, बावली, ग़रज़ जो रास्तेमें पड़ा, फलाँगता हुआ चला गया। यहाँ तक तो हमें भी कुछ बुरा महसूस नही हुआ; पर जब पीपलके पेड़परसे छलाँग मारी, तो ईजानिब-के भी होश खता हो गये। वह तो हमी थे, जो सवारी गाँठे रहे। ख़ैर, जब मुश्कीने पीपल परसे छलाँग मारी, तो हम भी गरम हो गये। फिर हमें ताब कहाँ? हमने अपनी बन्दूक़ सीधी कर ली। हम चाहते थे कि घोड़ेको गोली मार दें कि सामने हिरन दिखाई दे गया, बस गोली दनसे दाग़ दी। एक ही गोलीमें हिरनका बाँया पाँव और कान ज़ख़्मी कर दिये।"

इतना सुनना था कि यार लोग बेहताशा चीख़ उठे—"वल्लाह!

क्या सुलभा हुआ निशाना है। एक ही गोलीमें पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये। इसे कहते है शिकारका शौक़। जीवका जीव न मरा और शौक़का शौक़ पूरा हो गया। अल्लाह जानता है, हुज़ूरके वो सधे हुए हाथ हे कि चूमनेको जी चाहता है!"

चिराग़अली—सधे हुए हाथोंके क्या कहने? चाहें तो बन्दूककी गोलीसे नोकेमिज़गां (पलकके बालकी नोक) उड़ा दें, और आँखको मालूम तक न हो।

बेगम किवाड़की आड़से सब कुछ सुन रही थी। अब उससे अधिक बर्दाश्त न हो सका, वह मारे गुस्सेके लोटन कबूतर हो रही थी, कड़ककर बोली—"वाह रे खुशामदी टट्टुओ, क्या हां-में हाँ मिलाई है।"

बेगमकी आवाज़ सुनी तो गपोड़शंखकी नानी मर गई। भीगी बिल्लीकी तरह इधर-उधर देखने लगे। खुशामदी लोग भी इधर-उधर खिसकनेको हुए कि उनमेंसे चिरागअली बोला—"समझमें नही आता, हुज़ूरने ऐसी कौन-सी झूठ बात कही है, जो बेगमसाहबाके दुश्मनोंको इतना सदमा पहुँचा है।"

बेगम डाँटकर बोली—"झूठ नही तो क्या सच है? पीपलके पेड़को घोड़ा फलाँग गया, एक ही गोलीसे हिरनका पाँव और कान ज़ख्मी कर दिये। कहाँ पाँव कहाँ कान! निगोड़ी झूठ बोलनेमें भी अक्लकी ज़रूरत है।"

चिराग़अली—"बस, इतनी ज़रा-सी बातपर हुज़ूरको झूठा समझ लिया। उस रोज़ तो मैं भी हुज़ूरके हमराह सायेकी तरह साथ था। वाक़या तो हुज़ूरने सच-सच ही बयान किया है। जैसा कि हुज़ूरने फ़रमाया कि आँधी उस रोज़ बड़े ज़ोरसे आई, बस उस आँधीमें एक पीपलका दरख़्त रास्तेमें गिर पड़ा और घोड़ा उसे आसानीसे फलाँग गया और जिस वक़्त हुज़ूरने गोली चलाई, उस वक़्त हिरन अपने बाँये पाँवसे कान खुजा रहा था, इसलिये गोली पाँव और कानको जख्मी करती हुई निकल गई।"

इतना सुनना था कि यारोंने आस्मान सिरपर उठा लिया—"वल्लाह, क्या कहना है ! आलिमोंकी बात समझनेके लिये भी आलिम होनेकी ज़रूरत है ।"

बेगम बेचारी झेंपकर अन्दर चली गई ।

चिरागअलीकी हाजिरबयानीसे नवाब साहबकी बाछें खिल गई । मजेमें आकर बोले—"चिरागअली साहब ! आप तो हाजिरजवाबीमें कमाल रखते हैं ।"

चिराग़अली—अरे साहब ! मैं क्या कहूँ, यह सब बुज़ुर्गोंकी जूतियोंका तुफ़ैल है । हमारे बाबाके ख़ालाके नानाकी फूफीके ससुरेके बहनोईके मामू लखनऊके नवाब साहबके यहाँ मुसाहिब थे । एक रोज नवाब साहबके हमराह सैरको तशरीफ ले गये । घूमते-फिरते रात हो गई तो नवाब साहबने जो गीदड़ोंके रोनेकी आवाज सुनी तो हैरतमें आकर पूछ बैठे—अमाँ यह जानवर क्यों रो रहे हैं ? तब हमारे मरहूम मोहतरिमने फ़र्माया कि—हुज़ूर ! सरदीकी वजहसे रो रहे हैं । रहमदिल नवाब साहबने कम्बल बँटवानेके लिये हुक्म दिया तो हमारे मरहूम पुरखा बोले—ऐ वाह हुज़ूर ! कम्बल तो अदना आदमी दे जाते हैं । आपकी तरफसे दुशाले बँटने चाहिएँ । कहनेकी देर थी नवाब साहबने लाखों रुपया खैरातके लिये अता फ़र्मा दिया । यह तो हुज़ूर भी जानते हैं, दुशाले जानवरोंको क्या बाँटे जाते, यह तो सरकारकी ग़रीबपरवरीका एक तरीक़ा था । कुछ अर्सेके बाद सैरको फिर गये, तो दस्तूरके मुताबिक़ गीदड़ोंको तो रोना था ही । रोना सुनते ही नवाब साहब बोले—अब यह जानवर क्यों रो रहे हैं ? तब हमारे मरहूम पुरखाने, (खुदा उन्हें जन्नत बख़्शे) फर्माया—हुज़ूर ये लोग रो नहीं रहे हैं । दुशाले मिल जानेसे सरकारकी जान-मालकी दुआ माँग रहे हैं । हुज़ूर ऐसे हाज़िर जवाब थे हमारे पुरखा । हुज़ूर, शेख़ीकी बात नहीं है । अकबर बादशाहके दरबारी मुल्ला दोप्याज़ा और राजा बीरबरसे हमारे ख़ान्दानका सिज़रानसब (वंशवृक्ष) मिलता है ।

बदहवासराय––शेख साहब ! आपने यह एक ही दूनकी हाँकी ! कुजा बीरबर, कुजा आप ! वह हिन्दू थे और आप हैं मुसलमान ।

गुलखैरू––मियाँ मुन्शीजी, पहले किसीकी पूरी बात सुन तो लिया करो, खा-म-खा बीचमें कूद पड़े । चिरागअली साहब बजा फर्माते है । मै ख़ुद बचपनसे सुनता आया हूँ कि बीरबरके किसी नौकरने शेखजीके गाँवसे खाट खरीदी थी । तभीसे यह लोग एक कुनबेकी तरह रहते आये है ।

नवाब––मियाँ गुलखैरू ! तुम भी कमाल करते हो, क्या खाट खरीदनेसे भी कुनवेदारी हो जाती है ?"

चिरागअली––इस चौदहवी सदीकी बात जाने दीजिये, आज-कल तो सगे भाई कट मरते है । पहले वक़्तोंमें गाँवकी बेटी सारे गाँवकी बहिन-बेटी होती थी । किसीका दामाद आया और गाँवभरने उसकी अपने दामादकी तरह ख़ातिर-तवाज़ह शुरू कर दी । हमें अपना बचपना अच्छी तरह याद है । नथिया हलालख़ोरीको ताई, सुखिया चमारीको चाची, नन्ही धोबनको फूफी और रमजानी सक़्केको हम ताया कहा करते थे । इसी तरह हमारे वालिद सबसे अदब क़ायदेसे बोलते थे, क्या मजाल किसीका नाम मुँहसे निकल जाय । पुराने वक़्तोंकी बात ही निराली थी ।

नवाब––मियाँ गुलखैरू ! और आप किस ख़ान्दानसे निस्बत रखते है ?

गुलखैरू––हुज़ूर ! हमें तो अपने ख़ान्दानका कुछ पता नही, वालिद साहबके फ़ौत होनेके ७ माह बाद हमें तो इस सराये फ़ानीमें अल्लाह मियाँ-ने उतारा था । मगर सुनते है शेर अफगन और हमारे बाबा ख़ालाज़ाद (मौसेरे) भाई थे ।

नवाब––मियाँ शेर अफगन, और आपके बाबाके ख़ालाज़ाद भाई ! वोह क्योंकर ? तब तो यार तुम वहुत बड़े आदमी निकले । अमाँ यह वात अबतक छुपाये क्यों रक्खी ?

गुलखैरू––हुज़ूर, अपनी तारीफ़ क्या अपने मुँहसे अच्छी लगती

है ? यह तो हुज़ूरने पूछा तो बातोंके सिलसिलेमें कह बैठा वर्ना मरते दमतक ज़ाहिर न करता ।

नवाब—हाँ, तो शेर अफगन आपके बाबाजानके ख़ालाज़ाद भाई क्योकर थे ?

गुलख़ैरू—हुज़ूर, आपको नही मालूम ? यह क़िस्सा तो सारे विलायतमें, लण्डनमें, बम्बईमे, हिन्दुस्तानमें, लाहौरमें, पजाबमे, दिल्लीके चाँदनी चौकमे बच्चे-बच्चेके विरदे ज़बान है ।"

नवाब—ताज्जुब !

गुलख़ैरू—शेर अफ़गनके और हमारे बाबाके घोड़े दोनों एक जंगलमें चरा करते थे । तभीसे उन दोनोमें ख़ालाज़ाद भाई-जैसा प्यार हो गया था ।

बदहवास—किनमें, घोड़ोमें या तुम्हारे बाबा और शेर अफ़गनमें ?

गुलख़ैरू—मुन्शीजी, हो निरे शेख़चिल्ली ? मै क्या देखने गया था ख़ुद अन्दाज़ा लगालो ।

चिराग़अली—भाई गुलख़ैरू ! आपके उन बुज़ुर्गवारआलामें सिफात क्या-क्या थी ?"

गुलख़ैरू—सिफ़ात, लाखो । तीतर लड़ाना वह जानते थे, कबूतर वह पालते थे, कनकौवे वह उड़ाते थे, बटेरोंकी पालियाँ वह बदते थे और हाज़िर जवाब ऐसे कि...

सब—भई ख़ूब !

गुलख़ैरू—एकबार हमारे बाबाजान ससुरालसे दादीको लिये आ रहे थे । रास्तेमें एक रईसज़ादेने छेड़नेकी नीयतसे पूछा—क्यों भाई, यह जो तेरे साथ चल रही है, तेरी बहन होती है न ?

औरतके मुँहपर बहन बनाना, समझ लीजिये हुज़ूर मर्दके लिये कैसी चिढ़ है ? मगर वह चिढ़े नही, बड़े ही भोलेपनसे जवाब दिया—बन्दानवाज़, जिसे आप बहन कहते हैं वह मेरी ब्रीवी होती है । इतना सुनते

ही हमारी दादी साहिबा तो खिलखिलाकर हँस पड़ी, मगर रईसजादा बगलें झाँकने लगा।

नवाब—भई वाह ! क्या माक़ूल मजाक हुआ है कि तबियत बाग़बाग़ हो गई। मुन्शी बदहवासराय साहब ! सुना है आपका खान्दान भी तो किसी आलीविक़ारसे ताल्लुक़ रखता है ?

बदहवास—जी हाँ, इतना तो नही मगर हाँ, हमारी नानीके पीतसरेके मौसेरे भाईके सालेके भानजदामाद लालबुझक्कड़ थे। यही मशहूरोमारूफ बुजुर्ग हमारे खान्दानके बड़े थे।

चिराग़अली—आहा, आप उन आला हस्तीसे ताल्लुक़ रखते है। सुना है वह तो बड़े ज़हीन इन्सान थे। हाज़िरजवाबी में सुना है कमाल रखते थे।

बदहवास—अरे साहब ! कमाल क्या, अपना सानी नही रखते थे। उनका दम ग़नीमत था। आजतक उस गाँववाले उन्हें याद करके रोते है। एक मर्तबा रातको गाँवमेंसे हाथी निकल गया। सुबह उठकर लोगोंने जो हाथीके पाँवके निशान देखे तो, भौंचक्के हो गये। उन दिनों काहेको किसीने हाथी देखा था, आज कलकी तरह कुत्ते-बिल्लीके मानिन्द तो हाथी फिरते न थे। लाखोमें किसी एकने देखा होगा। अब सब लोग हैरान कि हे परमात्मा यह क्या बला आस्मानसे कूदी ? लेकिन किसीकी समझमें खाक न आया। आख़िर हमारे बुज़ुर्गवार साहबके पास लोग गये और अर्ज मिन्नत करके उन्हें निशान दिखाने लाये, उन्होंने देखते ही फ़र्माया—

लाल बुझक्कड़ जाने और न जाने कोय।
पगमें चक्की बाँधके हिरना कूदा होय॥

सब लोग—वाह वा वाह ! क्या हाज़िर दिमाग़ थे ! इसे कहते हैं फिलबदी शायरी ! क्या नाज़ुक ख़याल है ? हिरनके पाँवमें चक्की बाँधकर हाथीके पंजेसे मुशाहबत देकर क्या बात पैदा की है ? सुभान

अल्लाह् ! सुभान अल्लाह् !! क्या सूझ थी, क्या दिमाग़ था, शायरीमें कितनी फ़साहत और बलागत भरी हुई है कि वाह् वा, दाद नही दी जा सकती ।

इसी सिलसिलेमें ही जवाँमर्दीकी डींगें मारी जाने लगी कि यकायक 'हाय मर गई, बचाना, दौड़ना' की चीख़ सुनी, तो भगदड़ मच गई। गपोड़शंख कूदकर ज़नानेमे हो लिये, कोई चारपाईके नीचे तो कोई किवाड़ों-की जोड़ीके पीछे । ग़रज जिसे जहाँ मौक़ा मिला घुस गया । अब सब हैरान कि यह हिन्दू-मुस्लिम झगड़ा कहाँ और कैसे हो गया ? किसकी जान फ़ालतू थी, जो बाहर जाकर पता लगाये । और सच बात तो यह है कि मारे बौखलाहटके यह बात दर्याफ़्त करनेकी सूझी ही किस मरदूदको थी ? आख़िर जब बूढ़ी मामा रोती हुई और लँगड़ाती हुई ऊपर आई तब पता चला कि जीनेपर केलेके छिलके परसे उसका पाँव फिसल गया था, जिससे कि उसके हड्डे-गुड्डे टूट गये थे, उसीने यह शोर मचाया था ।

हक़ीक़त मालूम होते ही सब ही-ही हू-हू करते हुए फिर इकट्ठे हो गये ।

गपोड़शंख—लोग भी कैसे गावदी है, तिलकी तेलन और राईका पहाड़ बना लेते है । मै तो समझा कि डाकू आ गये, दौड़कर तलवार लाऊँ कि इतनेमें क़िस्सा ही बेबाक हो गया ! इल्म क़सम, दिलके अरमान दिल ही में रह् गये, हसरतोंका ख़ून हो गया । मुद्दतोंसे तलवार चलानेको बाज़ू फड़क रहे थे, रह्-रह्कर मन्सूबे बाँध रहा था, यूँ तलवार चलाऊँगा और यूँ धोबीपाट और उखेड़में बैठकर दे मारूँगा, मगर अफ़सोस ! वह नादिरमौक़ा ही हाथ न आया ।

गुलखैरू—और हुज़ूर मेरा हौसला तो देखिये, शोरोग़ुल सुनते ही किवाड़ोंके पीछे हो रहा कि कब बलवाई आवें और कब सबसे पहले तुला हुआ हाथ जमाऊँ ।

चिरागअली--मेरी न कहना, मै चारपाईके नीचे बैठा ही इस नीयत-से था कि इधर डाकू आएँ और उधर मै चारपाई उनके ऊपर उलटकर गिरिफ़्तार करूँ ।

बदहवासराय--यारो, तुम तो कट मरनेको तैयार हो । तुम्हें कोई रोनेवाला न धोनेवाला, आज मरे कल दूसरा दिन । आगे नाथ न पीछे पगहा, पर यहाँ तो कुनबेदार आदमी ठहरे । बहन हमारे, भांजी हमारे । फिर क्योंकर लड़नेको तैयार हो जाते । चुपकेसे सन्दूकचेमें बैठ गये, कि कोई लड़े या मरे, हम तो कुछ न बोलेंगे । हाँ, सन्दूकके सामान-के कोई हाथ लगाता, तो हम अलबत्ता जानपर खेल जाते । चमडी दे देते, पर दमड़ी न जाने देते । जानसे ज्यादा रुपयेकी क़द्र करना हमने तहसीलके खजांची साहबकी अरदलीमें रहकर सीखा ।

गपोड़शंख बीच ही में बात काटकर बोले--अमाँ, यह तो बताओ झूठको लोग गुनाह क्यों समझते है ?

गुलखैरू--हज़रत सच तो यूँ है कि झूठको गुनाह वही लोग समझते है, जिनके पास अक़्ल कभी झाँकने भी नही आती । वरना झूठके बगैर दुनियाँका काम ही नही चल सकता । औरोंकी बात जाने दीजिए, हर एक क़ौम और हर एक देशके रूहेरवाँ शायर लोग होते है, सब उनके बताये हुए रास्तेपर चलते है, वह भी इस झूठसे न बचने पाये ।

बदहवास--यह एक ही दूनकी हाँकी, कि झूठसे न बचने पाये । बन्दे खुदा यह नही कहते कि सच उन्होंने ज़िन्दगी भर न बोला, ता-उम्र झूठकी ही परस्तिश करते रहे । माशूकके मुँहको चाँद, उसके रुख़सारके तिलको आशिक़की आहोंसे दुनियाँ भरके जले हुए पहाड़ोंका धुआँ बताया । उसके हॅसनेको बिजलियाँ गिराना और रोनेको मेंह बरसाना लिखा । उसके अबरू (भवें) और नौकेमिज़गां (पलकोंकी बालोंकी नोक) को छुरी, तीर, तलवार, दश्ना और खंजरसे भी ज्यादा ख़तरनाक समझा । उसकी कमर दूरबीनसे भी देखनेमें न आ सके, इतनी पतली और आँखें

काजलका भार भी न उठा सकें, इतनी नाज़ुक और उसकी . . .
साँपोंका जोड़ा तसलीम किया। ग़रज़ गधेके सरपर सीग, आसमानमें फूल और इन्सानके दुमतक लगानेमें वे लोग न चूके !

गुलख़ैरू—उफ़ ! उफ़ !! उफ़ !!! कैसा मूज़ी दर्द है कि चैन नही लेने देता।

नवाब—मियाँ गुलख़ैरू ! यह अचानक दर्द कैसा ? कहाँ हो गया भाई। अभी तो ख़ासे अच्छे-विच्छे बातें कर ही रहे थे।

गुलख़ैरू—अजी हुज़ूर क्या बताऊँ ? आपके ग़ुलामने कोठीके आँगनमें एक चमेलीका पेड़ लगा दिया है। मौक़ेकी बात, पेड़से फूल टूटकर मेरी पीठपर कुछ इस ढंगसे गिरा कि मै हाय करके रह गया। तोबा है, चैन नही लेने देता ! कुछ देर बातोंमें ख़ामोश रहा कि नामुराद फिर उठ खड़ा हुआ। उई लेना बचाना हाय. . .

चिराग़—यह दर्द कमबख्त होता ही ऐसा नामराद है कि तोबा, तोबा। दो रोज़ हुए पड़ोसमें एक फूहड़ धान कूट रही थी। उसकी धमकसे कानोंमें ऐसी टीस हो गई है कि किसी पहलू चैन नही पडता ! उफ़...।

बदहवास—हुज़ूर, अब तो सबको इजाज़त दीजिये। मुशायरेका रंग फिर कभी जमेगा मेरा भी बुरा हाल है। एक हफ़्ता हुआ जब एक पोश्तके दानेको ६ दफे पीसा ११ दफे छाना। चौथाई लुगदी पी, बाक़ी उठाकर रख दी। मगर क़ब्ज़के मारे तभीसे बुरा हाल है।

नवाब—भई ! हमारा ख़ुद बुरा हाल है। कल खिचड़ी खाते हुए पोंहचा उतर गया था। अच्छा भाई जाओ आराम करो वक़्त भी दससे ऊँचा हो गया है।

× × ×

एक दिन बेगम किसी रिश्तेदारीमें गई, तो उसे देखते ही औरतोंने चुपकेसे कहा—बहिनो, ख़ामोश रहो, गपोड़शंखकी घरवाली आ रही है, ऐसा न हो कि कोई बात हमारी यह

सुन जाय और फिर जाकर अपने मर्दसे कह दे। कही ऐसा हो गया, तो सारे शहरमें वातका बतंगड़ फैल जायगा। यह बात बेगमके कानोंमें भी पड़ गई। वह मारे ग़ैरतके उल्टे पाँव अपने घर लौट आई और आसन-पाटी लेकर पड़ रही। गपोड़शंख हैरान थे कि यह यकायक आनन्दकाण्ड-में कोपकाण्ड कैसे प्रारम्भ हो गया। अब उन्हें डर लगने लगा कि कही किष्कन्धा-काण्ड शुरू होकर लंका-काण्ड तक नौबत न पहुँचे। अनेक मिन्नतें और खुशामदोके बाद बेगम बोली—"आखिर तुम मुझे यूँ कबतक जलाओगे? सारे शहरमें बदनामी हो रही है, पर तुम्हारे कानपर जूँ तक नही रेंगती। मै पूछती हूँ, तुम्हें इस झूठ बोलनेमें क्या मजा आता है? कभी छठे-चौमासे, होली–दीवाली सच भी बोल लिया करो। बूढ़े होनेको आये, पर आदमी न बने। यह बाल क्या धूपमें सुखाकर ही सफेद करोगे?

गपोड़शंख सहमकर बोले—मै तो खुद ही इस झूठकी बीमारीसे परेशान हूँ। पर क्या करूँ, यार लोग पीछा छोड़ें तब न। उनकी शक्ल देखते ही झूठकी वहशत सवार हो जाती है। अच्छा लो, हम परदेश जाते है। न वहाँ ये लोग होंगे और न हम झूठ बोलेंगे। बस झूठकी आदत छोड़कर ही हम तुम्हें अब अपनी शक्ल दिखलायेंगे।

बेगमने खुशी-खुशी सफरकी तैयारी कर दी। यारोंसे विदा होकर गपोड़शंख शामके वक्त देशाटनको निकल पड़े। बेगम खुश थी कि अब पतिदेव सत्यवादी हरिश्चन्द्र ही बनकर आएँगे। यह सारी बदनामी भलाईमें तब्दील हो जायगी, लोग मुझे भी इज्ज़तकी नज़रसे देखेंगे। उनके आनेपर कुत्तोको दूध और भूखोंको भरपेट खाना खिलाऊँगी। इसी उधेड़ बुनमें रात निकल गई, खुशीके मारे उसे नींद न आई। सुबह उठकर उसने देखा, तो गपोड़शंख दालानमें पाँव फैलाये हुए दोनों कूल्हों-पर हाथ रखे हुए हांप रहे है! उनको देखते ही बेगमका माथा ठनका। अन्यमनस्क भावसे पूछा—क्यों, क्या सत्यवादी बन आये?

गपोड़शंख रुँधे हुए स्वरसे बोले—तुम्हें सत्यवादी बनानेकी पड़ी है, यहाँ जानकी नौबत आ पहुँची ।

बेगम घबड़ाकर बोली—क्यों क्या हुआ ?

गपोड़शंख थूँकको सटकते हुए बोले—यह न पूछो, याद आते ही बदनके रोंगटे खड़े हुए जाते हैं ।

बेगम उत्सुकतासे बोली—आखिर क्या बात हुई ?

गपोड़शंखने अपनी दास्तान इस प्रकार शुरू की—

यहाँसे चलकर मै दो घण्टेमें ही कदली बनमें पहुँच गया । वहाँ एक साफ़ सुथरी चट्टानपर बैठकर खाना खानेकी तैयारीमें था कि इतनेमें पूरे बाईस हाथ लम्बा, न जौभर छोटा न तिलभर बडा, शेर आ पहुँचा । यूँ शेरके शिकार सैकड़ों ही किये; पर न मालूम उस वक़्त क्या हुआ, उसे देखते ही मुझे पसीना आ गया । शायद पसीना आनेकी वजह मेरी गरम मिजाजी हो । खैर, मैंने उसे निशाना बनानेके लिए जो बन्दूक़ सँभालनी चाही, तो ख्याल आया कि इस निहत्थेसे तो खाली हाथ ही लड़ना चाहिए । यह सोचते ही मै चाहता था कि धोबीपाटका हाथ दिखाकर इसे ज़मीन सूँघा दूँ कि रहम आ गया और सोचा, क्यों नाहक इसकी जान लूँ ! यह तो जानवर है, इसका क्या बिगड़ेगा, मुफ्तमे इस जूनसे छूट जायगा; पर पाप नाहक़ मुझे लगेगा । यह ख़्याल आते ही मैं तो जूतियाँ छोड़कर भाग निकला । मुझे भागता देखकर शेर भी शेर हो गया । अजी, वह तो आखिर शेर था । भागते हुएको देखकर तो कुत्ता भी शेर हो जाता है । अब कही छिपनेकी जगह नही । क्या करूँ, कुछ सूझ ही न पड़ता था । शुक्र समझिये कि मैं बचपनसे ही जहीन हूँ । दिमाग़पर ज़रा ज़ोर दिया, तो चट औसान सूझ आया । चनेका पेड़ खड़ा हुआ था । बस, दो छलाँगमें पेड़की फुनगीपर जा बैठा । अब शेर बड़े चक्करमें, खिसियानी बिल्ली खम्भा नोचें—इस कहावतके मुआफ़िक झेंप उतारनेकी ग़रज़से लगा पेड़के चारों तरफ़ घूमने । कुछ देर तक तो मैं भी भूख और प्यासको रोके

सब्र किये बैठा रहा; पर पेशाबकी हाजतने ज़ोर पकड़ा तो परेशान हो गया। आख़िर सोचते-सोचते ख़्याल आया कि क्यों न दरख़्तपरसे बैठे बैठे ही पेशाब कर दूँ। मेरा दरख़्तपरसे पेशाब करना था कि वह ज़ालिम पेशाबकी धारको पकड़कर ऊपर चढ़ने लगा। तब तो मैं भी चौकड़ी भूल गया। घबड़ाकर पेशाब रोक लिया। पेशाबका रोकना था कि वह धड़ामसे औंधे मुँह ज़मीनपर गिरकर ठण्डा हो गया। एक मुसीबतसे निजात पाई, तो दूसरीको दावत दी। पेशाबकी धारके ज़ोरसे पेड़की जड़ें हिल गईं और मुझे लिए पानीके अंदर चली गई। ख़ैरियत हुई, जो हम तैरना जानते थे, वर्ना उसी खेतमें क़ब्र बनी होती"।

बेगम आँखे नचाती हुई बोली––जब पानीमें भीगकर आये हो तो बदनके कपड़े कैसे सूखे रह गये?

गपोड़शंख––आख़िर इतनी देर धूपमें चलकर आया हूँ। कपड़ोंके सूखनेमें कुछ देर लगती है।

बेगम माथेपर हाथ मारकर बोली––"बस, माफ करो। मैं बाज़ आई आपके सत्यवादी बननेसे। जितने पहले थे उतने ही बने रहो––आगे न बढ़ो, यही ग़नीमत है। अल्लाह वास्ता न डाले ऐसे गपोड़शंखों और झूठोंके बादशाहोंसे"।

धर्म-ग्रन्थोंसे

स्वार्थी भावना

अक्सर ऋद्धिधारी मुनियोंके आहार लेनेके अवसरपर रत्नोंकी वर्षा होती है। एक बारका जैनपुराणोंमें उल्लेख है कि एक नगरमें जब ऋद्धिधारी मुनियोंका आगमन हुआ तो भक्तोंके घर आहार लेते हुए रत्नोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रलोभनको एक बुढ़िया संवरण न कर सकी और उसने भी विधिवत् आहार बनाकर मुनि महाराजको नवधा भक्तिपूर्वक पड़गाहा[1]। मुनि महाराजके अँजुली करनेपर बुढ़िया जल्दी-जल्दी गरम खीर उनके हाथपर[2] खानेके लिये डाल, ऊपरको देखने लगी कि अब रत्नोंकी वर्षा हुई, परन्तु मुनि महाराजका हाथ तो जल गया, किन्तु रत्न न बरसे। मुनि अन्तराय समझकर चले भी गये। मगर बुढ़िया ऊपरको मुँह किये रत्न-वृष्टिका इन्तज़ार ही करती रही। उसकी समझ में यह तनिक भी नहीं आया कि निःस्वार्थ और स्वार्थ-मूलक भाव भी कुछ अर्थ रखते हैं।

१—द्वारपर आकर अत्यन्त आदर-सत्कारपूर्वक रसोईमें ले गई।

२—दिगम्बर जैन मुनि खड़े होकर अपने हाथमें भोजन लेकर खाते हैं, बर्तनमें नहीं।

गर्व

भरत चक्रवर्त्ती छ:खण्ड विजय करके वृषभाचल पर्वतपर अपना नाम अंकित करने जब गये, तब उन्हें अभिमान हुआ कि मैं ही एक ऐसा प्रथम चक्रवर्त्ती हूँ जिसका नाम पर्वतपर सबसे शिरोमणि होगा। किन्तु पर्वतपर पहुँचते ही उनका सारा गर्व खर्व हो गया। जब उन्होंने देखा कि यहाँ तो नाम लिखने तकको स्थान नही, न जाने कितने और चक्रवर्त्ती पूर्वकालमें यहाँ नाम लिख गये है। तब लाचार होकर उन्हें एक नाम मिटाकर अपना नाम अंकित करना पड़ा।

विकारी नेत्र

किन्ही आत्म-ध्यानी मुनिराजके पास एक मोक्षलोलुप भक्त बैठा था। उसे अपने धर्म-रत होनेका अभिमान था। गृहस्थ होते हुए भी अपनेमें आत्मसंयमकी पूर्णता समझता था। मुनिराजके दर्शनार्थ कुछ स्त्रियाँ आई तो संयमाभिमानी भक्तसे उनकी ओर देखे बिना न रहा गया। पहली बार देखनेपर मुनिराज कुछ न बोले, किन्तु यह देखने-का क्रम जब एक वारसे अधिक जारी रहा तो मुनिराज बोले—"वत्स, प्रायश्चित्त लो!"

"प्रभो! मेरा अपराध?"

"ओह! अपराध करते हुए भी उसे अपराध नही समझते, वत्स! एक बार तो अनायास किसीकी ओर दृष्टि जा सकती है, किन्तु दोबारा तो विकारी नेत्र ही उठेंगे, और आत्मामें विकार आना, यही पतनका श्रीगणेश है। आत्म-संयमका अभ्यासी प्रायश्चित्त द्वारा ही विकारोंपर विजय प्राप्त कर सकता है।"

मोक्ष-लोलुप भक्तको तब अपने संयमकी अपूर्णता प्रतीत हुई।

पापोंसे घृणा

"प्रभो ! क्या मुझे दीक्षित नही किया जायगा ?"

"नही ।"

"इसका कारण ?"

"यही कि तुम अज्ञातपुत्र हो ।"

"फिर इसका कोई उपाय ?"

"केवल अपने पिताका परिचय करानेपर दीक्षित हो सकोगे ।"

"दीक्षित हो सकूँगा—किन्तु पिताका परिचय कराने पर ! ओह ! मैंने तो उन्हें आजतक नही देखा । भगवन् ! दीनबन्धो ! क्या पितृ-हीनको धर्म-रत होनेका अधिकार नही है ? सुना है, धर्मका द्वार तो सभी शरणागत प्राणियोंके लिये खुला हुआ है ।"

"वत्स ! तुम्हारा कथन सत्य है । किन्तु तुम अभी सुकुमार हो, इसलिए तुम्हें दीक्षित करनेसे पूर्व उनकी सम्मतिकी आवश्यकता है ।"

१५वर्षका बालक निरुत्तर हो गया । उसके फूलसे गुलाबी कपोल मुर्झा-जैसे गये । सरल नेत्रोंके नीचे निराशाकी एक रेखा-सी खिंच गई, और स्वच्छ उन्नत ललाटपर पसीनेकी बूँदें झलक आई । उसका उत्साह भंग हो गया । घर लौटकर वह अपराधीकी तरह दरवाज़ेसे लगकर खड़ा हो गया । उसकी स्नेहमयी माँ पुत्रका मुर्झाया हुआ चेहरा देख प्यारसे सिरपर हाथ फेरते हुए बोली—"क्यों मुन्ने, क्या दीक्षित नही हुए ?"

"नही ।"

"क्यों ?"

"वे कहते है, पिताकी अनुमति दिलाओ ।"

माँ ने सुना तो कलेजा थामकर रह गई । उसका पापमय जीवन बाइस्कोपकी तरह नेत्रोंके सामने आगया । वह नहीं चाहती थी कि इस

सरल हृदय बालकको पापका नाम भी मालूम होने पाये। इसलिये उसके होश सम्भालनेसे पूर्व ही वह अपना सुधार कर चुकी थी। उसे अपने पुत्र का भविष्य उज्ज्वल करना था। अतः वह बोली—

"जाओ बेटा! कहना जिस समय मैं उत्पन्न हुआ था, मेरे अनेक पिता थे, उन सबकी अनुमति प्राप्त करना असम्भव है।"

बालक सब कुछ समझ गया। किन्तु उसे अपने लक्ष्यका ध्यान था। दौड़ा हुआ आचार्य्यके पास गया और एक साँसमें माँका सन्देश कह सुनाया।

आचार्य्य गद्गद्कंठसे बोले—"वत्स! परीक्षा हो चुकी। तू सत्यवादी है इसलिये आ, तू धर्ममें दीक्षित होनेका अवश्य अधिकारी है।"

कुछ कुल, जाति-गर्वोन्मत्त भक्त आचार्य्यके इस कार्यकी आलोचना करने लगे। भला एक वेश्या-पुत्र और वह धर्ममें दीक्षित किया जाये। असम्भव है, ऐसा कभी न हो सकेगा।

क्षमाशील प्रभु उनके मनोभाव ताड़ गये। बोले—"विचारशील सज्जनो! पापीसे घृणा न करके उसके पापसे घृणा करनी चाहिए। मानव-जीवनमें भूल हो जाना सम्भव है। पापी मनुष्यका प्रायश्चित्त द्वारा उद्धार हो सकता है। किन्तु जो जान बूझकर पाप-कर्ममें लिप्त है, अपना मायावी रूप बनाकर लोगोंको धोका देते है, एक पापको छुपानेके लिये जो अनेक पाप करते हैं—उनका उद्धार होना कठिन है। जब धर्म पतित-पावन कहलाता है, तब एक वेश्याका भी उसके सेवन करनेसे कल्याण क्यों नही हो सकता? फिर यह तो वेश्या-पुत्र है, इसने तो कोई पाप किया भी नहीं। पाप यदि किया भी है तो इसकी माताने किया है। उसका दण्ड इसे क्यों?"

आचार्य्यकी वाणीमें जादू था, सबने प्रेम-विभोर होकर अज्ञात-पुत्रको गलेसे लगा लिया।

साधु-परीक्षा

तीनसौ वर्ष पूर्व आगरेमें जब कविवर पं० बनारसीदासजी जीवित थे, तब वहाँ एक साधु आये। साधुके क्षमादि गुणोंकी प्रशंसा सुनी तो कविवर भी दर्शनार्थ पधारे। और दीनतापूर्वक साधु महाराजसे बोले–"दया-सिन्धु! क्या मैं आपका शुभ नाम मालूम करनेकी धृष्टता कर सकता हूँ?"

"मुझे शीतलप्रसाद कहते हैं।"

कविवर नाम सुनकर वहाँ होनेवाली तत्त्वचर्चामें लीन हो गये। फिर थोड़ी देर बाद अपना भुलक्कड़ स्वभाव बताते हुए साधुसे नाम पूछ बैठे। साधुने अन्यमनस्क भावसे नाम दोहरा दिया। कविवरको सन्तोष न हुआ। फिर ज़रासी देरके बाद नाम पूछा तो साधु महाराज आग-बबूला हो गये और झुँझलाकर बोले––"तू भी अजीब आदमी है। अबे! दस बार कह दिया––हमारा नाम है शीतलप्रसाद! शीतलप्रसाद!! शीतलप्रसाद!!! फिर क्यों दिमाग़ चाटता है?"

कविवरने साधुका यह कोपकाण्ड देखा तो उठकर चल दिये और जाते हुए बोले––"महाराज! आपका नाम शीतलप्रसाद नहीं, ज्वाला-प्रसाद मालूम होता है।"

लक्ष्य

पीपलके वृक्षपर एक काली मिर्च धागेमें बाँधकर लटकाते हुए गुरु द्रोणाचार्यने कौरव-पाडव सब शिष्योंसे कहा—"तुम्हें अपने बाणों से यह मिर्च नीचे गिरानी होगी।"

फिर क्रमशः प्रत्येक शिष्यको उसे बाण द्वारा नीचे गिरानेकी आज्ञा दी। साथ ही बाण छोड़नेसे पूर्व वे प्रत्येक शिष्यसे पूछते जाते थे—"तुम्हें इस वृक्षपर मिर्चके अलावा और क्या दिखाई देता है?"

प्रायः सभी शिष्योंका समान उत्तर था—"वृक्ष, तना, डालियाँ, टहनी, पत्ते, पीपली।" इनमेंसे एक भी लक्ष्यको जब न भेद सका, तब अर्जुनको लक्ष्य भेदनेके लिये आदेश दिया गया और उससे भी पूछा गया—"अर्जुन! तुम्हें काली मिर्चके अलावा और क्या-क्या दिखाई देता है?"

अर्जुनका लक्ष्य काली मिर्चकी ओर था, उसी ओर मुँह किये बोला—"गुरुदेव! यहाँ काली मिर्चके सिवा और तो कुछ भी नही है, मुझे तो आप भी दिखाई नही दे रहे, मुझे स्वयं अपना अस्तित्व मालूम नही।"

गुरुदेवके संकेतपर बाण छुटा और वह काली मिर्चको लेकर नीचे आ गिरा। गुरुदेव अर्जुनको शाबाशी देकर अनुत्तीर्ण शिष्योंसे हँसकर बोले—

"अपने लक्ष्यको छोड़कर जो दूसरी ओर दृष्टिपात करता है, वह सफल नही होता। मोक्ष-लोलुप संसारको भी देखे तो मोक्ष कैसे पाये? गुण, गुणी, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय और ध्यान, ध्येय, ध्याता, तू और मै, यह और वहका जब अन्तर्द्वन्द्व आत्मामें मचा हो, तब आत्माके परम लक्ष्य परमात्मा पदकी प्राप्ति कहाँ? तुम लोग मिर्चको न देखकर टहनी, पत्ते ही देख सके, अतः जो तुम्हारा लक्ष्य था, उसीको भेद सके, यदि अर्जुनकी तरह तुम्हारा लक्ष्य काली मिर्चपर होता तो तुम भी उसे भेदनेमें सफल होते।"

रूपका मद

सनत्कुमार चक्रवर्त्तीकी सुन्दरताका बखान जब जीभरकर देवराज कर चुके तो श्रोतृ-मंडलमें एक फुसफुसाहट-सी फैल गई।

कुछने कहा—"देवराज आज आवश्यकतासे अधिक अतिशयोक्ति कर गये हैं।"

एकने टीप कसी—"असत्य भाषण भी एक कला है। आजका मुख्य विषय ही यह था।"

कई एकने अपनी सम्मति बनाई—"मालूम होता है सनत् अधिक कुरूप है। देवराजने उपहास करनेका यह नवीन ढंग निकाला है।"

और उन सबमें जो एक मनचला था। उसने मनमें सोचा, "क्यों किसीकी नीयतपर आक्रमण किया जाय। चलकर नीर-क्षीर-विवेक ही क्यों न कर लूँ?"

प्रातःकाल सनत् चक्रवर्त्ती मल्लशालामें सहस्त्रों पहलवानोंको ज़ोर करा चुके थे। साँस फूली हुई थी। शरीर पसीनेसे तर-ब-तर और धूल धूसरित था। तभी प्रहरीने आकर निवेदन किया—

"एक वृद्ध ब्राह्मण आपके दर्शन करके तीर्थ-यात्राको प्रस्थान करना चाहता है। उससे काफी कहा गया कि महाराज इस समय दर्शन देने योग्य स्थितिमें नहीं है। परन्तु उसका आग्रह है कि प्रस्थानका मुहूर्त्त निकट है, दर्शन किये बिना प्रस्थान होगा नहीं और प्रस्थानका समय टालना भी सम्भव नही है।"

दर्शन करनेकी अनुमति मिलनेपर विप्रने देखा तो अपलक देखता ही रहा—"इस रूप-छटाका वर्णन तो देवराज सहस्त्रांश भी नही कर सके। जिसके रोम-रोमपर कामदेव न्योछावर होता हो, जिसकी आभाके सम्मुख रति लोट-पोट होती हो, उसकी सुन्दरताका बखान क्या इसतरह किये जाने योग्य था?"

विप्रको रूप देखनेमें निमग्न देखा तो सनत् बोले––"ब्रह्मदेव ! यदि तुम्हें सचमुच देखनेका चाव है तो हमें दरबारमें देखो ।"

विप्रने प्रस्थान स्थगित कर दिया किन्तु रूप देखनेके लोभको संवरण न कर सका ।

दरबारमें महाराज आये तो मानों विजली कौंध गई । वह रूप, और उसपर सलीकेसे पहने हुए वस्त्र-आभूषण, फिर इत्रकी महक, पानकी लाली, लोग कलेजा थामकर रह गये ।

"विप्र ! देखा ?"

"देखा, परन्तु वह बात कहाँ ?"

"क्या ?"

"जी, तनिक पीकदानमें थूककर देखिये ।"

थूका तो हज़ारों कीटाणु उसमें बिलबिलाहट कर रहे थे । तनिक-सा रूपमद होनेसे दर्शनका पुनः निमंत्रण था, उसी मदके उपहारस्वरूप उस नश्वर शरीरमें सैकड़ों रोग आ गये । संसार-वैभवकी क्षणभंगुरताका ध्यान आते ही सनत्ने वैभवको ठुकराकर आत्माके सच्चे रूपको निखारने के लिये वनोंमें जाकर दीक्षा ले ली ।

जीवन्मुक्त

एक सेठ अपने कारोबारमें इतने व्यस्त रहते थे कि भोजन और शयन भी समयपर न कर पाते थे और पत्नी-सन्तानसे तो वार्तालाप करनेको समय था ही नहीं। उनकी पत्नीने एक रोज़ अवसर पाकर कहा—"आप इतनेसे कारोबारमें इतने व्यस्त है कि तन-मनकी भी सुध नही। जब आपका यह हाल है तो भरत चक्रवर्त्तीका न जाने क्या हाल होगा जिनके पास ९६ हज़ार रानियाँ और ६ खण्डका राज्य है।"

सेठजी बोले—"मै स्वयं कईबार सोचता हूँ कि वे कैसे इतना बड़ा शासन-कार्य चलाते होंगे और कब-कब वे रानियोंसे वार्तालाप करते होंगे ?"

किसी तरह समय निकालकर सेठ साहब दरबारमें गये तो नगर सेठके नाते भरतने इनसे कुशलक्षेम तथा उपस्थितिका कारण पूछा। कारण जान लेनेपर भरतने कहा—"सेठ साहब ! जब आप आये है तो हमारा रनवास भी देख लीजिये। आप कब-कब आते है। आपकी जिज्ञासा की पूर्त्ति भी कर दी जायगी।"

अन्तःपुरकी महिलासचिवको साथ कर दिया गया और आदेश दे दिया गया कि किसीको भी पहलेसे सूचना देनेकी आवश्यकता नहीं, जो जिस स्थितिमें है उसे उसी प्रकार रहने दिया जाय। नगर सेठसे कोई परदा नहीं है। साथ ही नगरसेठके हाथमें एक तेलका भरा हुआ कटोरा दे दिया गया और कानमें कह दिया—"सेठजी, आप जी भरकर हमारा रनवास देखें। परन्तु कटोरेसे तेलकी एक भी बूँद न गिरे यह ध्यान रखें। एक भी बूंद गिरनेसे प्राण संकटमें पड़ जाएँगे।"

सेठजी जब घूमकर आये तो मालूम हुआ कि उन्होंने कुछ भी न देखकर कटोरेपर ही ध्यान केन्द्रित रखा, क्योंकि बूंद गिर जानेसे प्राणोंकी चिन्ता थी।

भरत चक्रवर्त्ती सहास्य बोले—"सेठजी ! यही स्थिति मेरी ह। शरीरसे समस्त सांसारिक कार्य करता हूँ, पर आत्मा संसारसे भयभीत अपने चरम लक्ष्य आत्म-स्वातंत्र्यकी ओर लगी हुई है।"

गालियोंका दान

कुछ उद्दण्ड जब वुद्धको काफ़ी गालियाँ दे चुके तो बुद्ध हँसते हुए बोले—

"भद्र ! यह तो बताओ, यदि कोई दाता दान करे और भिक्षु न ले तो वह वस्तु किसके पास रहेगी ?"

"दाताके पास।"

"ऐसी बात है तो जो तुम गालियाँ मुझे दे रहे हो, मैं नही लेना चाहता।"

बुद्धकी करुणा

राजकुमार गौतम उद्यानमें सैर कर रहे थे कि उनके पाँवोंके पास एक पक्षी आकर गिरा। राजकुमारने देखा उसके परोंमें एक तीर चुभा है और वह बड़ी बेचैनीसे छटपटा रहा है। दयार्द्र होकर गौतमने पक्षीको उठाया और वे बड़े यत्नसे रक्तमें भीगे हुए तीरको निकालने लगे। गौतम अभी तीर निकाल भी न पाये थे कि हाथमें धनुष-बाण लिए एक शिकारीने आकर रोष-भरे स्वरमें कहा--

"आपको मेरा शिकार उठानेका क्या अधिकार था?"

राजकुमार गौतम स्नेह भरे स्वरमें बोले--"जब आपको उसके प्राण तक लेनेका अधिकार है तब मुझे उसके प्राण बचानेका भी अधिकार न दोगे भाई!"

राजकुमार गौतमकी सहृदयतासे पराजित शिकारी धनुष-बाण फेंक उनके चरणोंमें गिर पड़ा।

मधुर वचन

जब द्रौपदीसहित पाँचों पाण्डव वनोंमें देश-निर्वासनके दिन काट रहे थे——असह्य आपत्तियाँ झेलते हुए भी परस्पर प्रेमपूर्वक सन्तोषमय जीवन व्यतीत कर रहे थे——तब एक बार श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी सत्यभामा उनसे मिलने गये। विदा होते समय एकान्त पाकर सत्यभामाने द्रौपदीसे पूछा——

"बहन, पाँचों पाण्डव तुम्हें प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं, तुम्हारी तनिक-सी भी बातकी अवहेलना करनेकी उनमें सामर्थ्य नही है, वह कौन-सा मंत्र है जिसके प्रभावसे ये सब तुम्हारे वशीभूत है ?"

द्रौपदीने सहज-स्वभाव उत्तर दिया——"बहन, पतिव्रता स्त्री को तो ऐसी बात सोचनी भी नही चाहिए। पति और कुटुम्बीजन सब मधुर वचन तथा सेवासे प्रसन्न होते हैं, मंत्रादिसे वशीभूत करनेके प्रयत्नमें तो वे और भी परे खिचते है।"

यह सुनकर सत्यभामा मन ही मन अत्यन्त लज्जित हुई।

युधिष्ठिरका पाठ

कौरव और पाण्डव जब बचपनमें पढ़ा करते थे तब एक रोज़ उन्हें पढ़ाया गया—"सत्य बोलना चाहिए, क्रोध छोड़ना चाहिए।" दूसरे रोज सबने पाठ सुना दिया किन्तु युधिष्ठिर न सुना सके और वह खोए-हुए-से चुप-चाप बैठे रहे। उनके मुँहसे उस रोज़ एक शब्द भी नहीं निकला।

गुरुदेव झुँझलाकर बोले—"युधिष्ठिर! तू इतना मन्दबुद्धि क्यों है? क्या तुझे चौबीस घण्टेमें ये दो वाक्य भी कण्ठस्थ नहीं हो सकते?"

युधिष्ठिरका गला भर आया। वह अत्यन्त दीनतापूर्वक बोले—"गुरुदेव, मैं स्वयं अपनी इस मन्द बुद्धिपर लज्जित हूँ। चौबीस घण्टे में तो क्या, जीवनके अन्त समय तक इन दोनों वाक्योंको कंठस्थ कर सका—जीवनमें उतार सका—तो अपनेको भाग्यवान् समझूँगा। कलका पाठ इतना सरल नहीं था जिसे मैं इतनी शीघ्र याद कर लेता।"

गुरुदेव तव समझे कि पाठ याद करना जितना सरल है, उसे जीवनमें उतारना उतना सरल नहीं।

भाईका अपमान

पाण्डवोंका चिरशत्रु दुर्योधन जब किसी शत्रु-द्वारा बन्दी कर लिया गया, तब धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त व्याकुल हो उठे। उन्होंने भीमसे दुर्योधनको छुड़ा लानेका अनुरोध किया। भीम युधिष्ठिरकी आज्ञाकी अवहेलना करता हुआ बोला—

"मैं और उस पापीको छुड़ा लाऊँ? जिस अधमके कारण आज हम दर-दरके भिखारी और दाने-दानेको मोहताज है, जिस पापात्माने द्रौपदीका अपमान किया और जो हमारे जीवनके लिए राहु बना हुआ है, उसी नारकीय कीड़ेके प्रति इतनी मोह-ममता रखते हुए आपको कुछ ग्लानि नहीं होती धर्मराज?"

भीमके रोषभरे उत्तरसे धर्मराज चुप हो रहे; किन्तु उनकी आन्तरिक वेदना नेत्रोंकी राह मुँहपर अश्रुरूपमें लुढ़क पड़ी। अर्जुनने यह देखा तो लपककर गाण्डीव धनुष उठाया और जाकर शत्रुको युद्धके लिये ललकार, उसे पराजित करके, दुर्योधनको बन्धनसे मुक्त कर दिया। तब धर्मराज भीमसे हँसकर बोले—

"भैया, हम आपसमें भले ही मतभेद और शत्रुता रखते हैं, कौरव १०० और हम पाण्डव ५, बेशक जुदा-जुदा है। हम आपसमें लड़ेंगे, मरेंगे, किन्तु किसी दूसरेके मुक़ाबिलेमें हम १०० या ५ नहीं, अपितु १०५ हैं। संसारकी दृष्टिमें अब भी हम भाई-भाई है। हममेंसे किसी एकका अपमान हमारे समूचे वंशका अपमान है—यह बात तुम नही, अर्जुन जानते है।"

युधिष्ठिरके इस स्पष्टीकरणसे भीम मुँह लटका कर रह गये।

पापीका अन्न

महाभारत-युद्धमें कौरव-सेनापति भीष्म पितामह जब अर्जुनके बाणोंसे घायल होकर रण-भूमिमें गिर पड़े तो कुरुक्षेत्रमें हा-हाकार मच गया। कौरव-पाण्डव पारस्परिक वैर-भाव भूलकर गायकी तरह डकराते हुए उनके समीप आये। भीष्म पितामहकी मृत्यु यद्यपि पाण्डव-पक्षकी विजय-सूचक थी, फिर भी थे तो वे पितामह न ? धर्मराज युधिष्ठिर बालकोंकी भाँति फुप्पा मारकर रोने लगे। अन्तमें धैर्यपूर्वक रुँधे हुए कण्ठसे बोले—

"पितामह ! हम ईर्ष्यालु, दुर्बुद्धि पुत्रोंको, इस अन्त समयमें, जीवन में उतारा हुआ कुछ ऐसा उपदेश देते जाइये जिससे हम मनुष्य-जीवनकी सार्थकता प्राप्त कर सकें।"

धर्मराजके वाक्य पूरा होनेपर अभी पितामहके ओठ पूरी तरह हिल भी न पाये थे कि द्रौपदीके मुखपर एक हास्यरेखा देख सभी विचलित हो उठे। कौरवोंने रोषभरे नेत्रोंसे द्रौपदीको देखा। पाण्डवोंने इस अपमान और ग्लानिको अनुभव करते हुए सोचा—

"हमारे सरसे साया उठ रहा है और द्रौपदीको हास्य सूझा है।"

पितामहको कौरव-पाण्डवोंकी मनोव्यथा और द्रौपदीके हास्यको भाँपनेमें विलम्ब न लगा। वे मधुर स्वरमें बोले—

"बेटी द्रौपदी ! तेरे हास्यका मर्म मै जानता हूँ। तूने सोचा— जब भरे दरबारमें दुर्योधनने साड़ी खींची तब उपदेश देते न बना, वनोंमें पशु-तुल्य जीवन व्यतीत करनेको मजबूर किया गया, तब सान्त्वनाका एक शब्द भी मुँहसे न निकला, कीचक द्वारा लात मारे जानेके समाचार भी साम्यभावसे सुन लिए, रहने योग्य स्थान और क्षुधा-निवृत्तिको भोजन माँगनेपर जब कौरवोंने हमें दुतकार दिया, तब उपदेश याद न आया।

सत्य और अधिकारकी रक्षाके लिये पांडव युद्ध करनेको विवश हुए तो सहयोग देना तो दूर, उल्टा कौरवोंके सेनापति बनकर हमारे रक्तके प्यासे हो उठे, और जब पाण्डवों द्वारा मार खाकर ज़मीन सूंघ रहे हैं—मृत्युकी घड़ियाँ गिन रहे हैं—तब हमीको उपदेश देनेकी लालसा बलवती हो रही है। पुत्रि! तेरा यह सोचना सत्य है। तू मुझपर जितना हँसे कम है। परन्तु, पुत्री! उस समय मुझमें उपदेश देनेकी क्षमता नहीं थी, पापात्मा कौरवोंका अन्न खाकर मेरी आत्मा मलीन हो गई थी, दूषित रक्त नाड़ियोंमें बहनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो गई थी। किन्तु वह सब अपवित्र रक्त अर्जुनके बाणोंने निकाल दिया है। अतः आज मुझे सन्मार्ग बतानेका साहस हो सकता है।"

दृष्टि-भेद

महर्षि व्यासदेवके पुत्र शुकदेव संसारमें रहते हुए भी विरक्त थे। वे आत्म-कल्याणकी भावनासे प्रेरित होकर घरसे जंगलकी ओर चल दिये। तब व्यासदेव भी पुत्रमोहसे वशीभूत, उन्हे समझाकर घर वापिस लिवालानेके लिये पीछे-पीछे चले। मार्गमें दरियाके किनारे कुछ स्त्रियाँ स्नान कर रही थी। व्यासदेवको देखते ही सबने बड़ी तत्परतासे उचित परिधान लपेट लिये——अंगोपाग ढँक लिये।

महर्षि व्यासदेव बोले——"देवियो! वह अभी मेरा जवान पुत्र शुकदेव तुम्हारे आगेसे निकलकर गया है, उसे देखकर भी तुम नही सकुचाई, ज्योंकी त्यों स्नान करती रही। जो युवा था, सब तरह योग्य था, उससे तो परदा न किया, और मुझ अर्द्धमृतक समान वृद्धसे लजाकर परदा कर लिया, यह भेद कुछ समझमें नही आया।"

स्त्रियाँ बोलीं——"शुकदेव युवा होते हुए भी युवकोचित विकारोंसे रहित है। वह स्त्री-पुरुषके अन्तरको और उसके उपयोगको भी नही जानता, उसकी दृष्टिमें सारा विश्व एक रूप है। सासारिक भोगोपभोगो-से बालकके समान अबोध है। परन्तु देव! आपकी वैसी स्थिति नही है। इसलिये आपकी दृष्टिसे छुपनेके लिये परिधान लपेट लिये है।"

सौतेला भाई

वनोंमें भटकते हुए पाण्डवोंको प्यास लगी तो सहदेव पानी लेने तालाब पर गये। चारों भाइयोंकी जीभ सूखकर तालूसे लग गई मगर सहदेव न आये। तब नकुल, भीम, अर्जुन भी एकके बाद एक गये मगर कोई भी वापिस न आया। पानी लाना तो दरकिनार, ख़ाली हाथ भी कोई न लौटा। तब हारकर स्वयं उनकी टोहमें धर्मराज युधिष्ठिर पधारे। पानी न मिलनेसे जो एक झुँझलाहट मनमें हो रही थी, वहाँ अब चिन्ताने डेरा जमाया। प्यासकी बेचैनीका स्थान बरबस आशंकाने ले लिया।

तालाबपर जाकर देखा तो चारो भाई बेहोश पड़े हुए थे। सोचा, प्यासके कारण ही ऐसा हुआ है। अतः उनके मुँहमें पानी डालनेके लिये युधिष्ठिरने ज्यो ही तालाबसे पानी लेना चाहा कि एक गूंजती हुई आवाज़-से चौंककर देखा तो सामने एक विशाल मनुष्याकार छाया दीख पड़ी।

छाया द्वारा बतलाया गया कि तालाबपर उसीका अधिकार है। और इस तालाबका पानी वही पीनेका अधिकारी हो सकता है जो उस के इन प्रश्नोंका उत्तर दे सके। उनमें चार ये उत्तर थे——

प्र०——उत्तम धर्म कौन-सा है ?

उ०—जो दुःखसे छुटकारा दिलाये।

प्र०—अनुकरणीय मार्ग कौन-सा है ?

उ०—महापुरुष जिस मार्गसे गये हैं।

प्र०—आश्चर्य क्या है ?

उ०—मृत्युका न आना।

प्र०—सुख क्या है ?

उ०—निराकुलता।

युधिष्ठिरके उत्तर पसन्द आनेपर पानी पीनेकी आज्ञा भी प्रदान हो गई; साथ ही पुरस्कार-स्वरूप चारों भाइयोंमेंसे एकका जीवन माँगनेकी अनुमति भी।

धर्मराजने सहज स्वभाव बतलाया कि माँगना उन्हें कभी आया नहीं, फिर भी बन्धु-प्रेमसे लाचार नकुल या सहदेवके जीवन-दानके वे अभिलाषी हैं।

मनुष्याकार छाया ठहाका मारकर हँसती हुई प्यारपूर्वक बोली– "धर्मराज ! तुम्हारी मूर्खताके अनेक उदाहरण सुने थे, पर प्रत्यक्ष अनुभव आज ही हुआ। यह निश्चित है कि अन्यायके प्रतिकारके लिए तुम्हें कौरवोंसे युद्ध करना होगा। और उस युद्धमें विजयकी आशा भीम और अर्जुनके सहयोगपर ही अवलम्बित है। फिर भी उनका जीवन न चाहकर सहदेव या नकुलको चाहते हो, जो रण-कौशलसे सर्वथा अनभिज्ञ है। मालूम होता है आपत्तियोंकी चट्टानोंसे टकरा-टकराकर तुम्हारी विचार-शक्ति भी नष्ट-भ्रष्ट हो गई है।"

धर्मराज बन्धुओंपर आई हुई इस आपत्तिसे अत्यन्त व्याकुल थे। मनमें मानापमानका ध्यान लाये बिना ही बोले––

"मेरे सम्बन्धमें आप जो भी उचित समझें, सम्मति बनायें। मगर मेरी इस अभिलाषामें मेरा स्वार्थ केवल इतना ही है कि नकुल-सहदेव की जननी मेरी अत्यन्त स्नेहमयी माँ माद्री स्वर्गासीन हो चुकी है और अपनी जननी कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ ही। यदि इनमेंसे किसी एकको जीवित न कराकर भीम या अर्जुनको जीवित कराता हूँ तो वे सम्भव है यह सोचकर व्यथित हों कि संसारमें कुन्तीके दो पुत्र हैं, परन्तु मेरा एक भी नहीं। युधिष्ठिरने अपने सहोदर बन्धुका ही जीवन चाहा, सौतेलेका नही। शायद मेरी पक्षपातकी भावना उन्हें तो ठेस न पहुँचाये क्योंकि वे तो संसार की मोहमायासे दूर हैं, परन्तु संसारमें एक भ्रामक उदाहरण प्रस्फुटित हो जायगा। इसी बातको लेकर मेरी यह भावना हुई है। आप इसे मेरी मूर्खता भी समझें तो मुझे कोई पछतावा नहीं होगा।"

चारों भाई अँगड़ाई लेते हुए उठ बैठे। हवा जो कौतूहलवश तमाशा देखने खड़ी हो गई थी, वह यह कहती हुई कि—"दुनिया मूर्ख नही है जो युधिष्ठिरको धर्मराज कहती है"––संसारके कोने-कोनेमें भ्रातृ-प्रेमका यह समाचार सुनाने दौड़ गई।

इतिहाससे

मुहम्मदकी ख़ूबी

हज़रत मुहम्मद--जबतक अरबवालोंने उन्हें नबी स्वीकृत नही किया था तबकी बात है--घरसे रोजाना नमाज पढ़ने मस्जिदमें तशरीफ़ ले जाते तो रास्तेमें एक बुढ़िया उनके ऊपर कूड़ा डालकर उन्हें रोज़ाना तंग करती। हज़रत कुछ न कहते, चुपचाप मन ही मनमें ईश्वरसे उसे सुबुद्धि देनेकी प्रार्थना करते हुए नमाज़ पढ़ने चले जाते। हस्बदस्तूर मुहम्मदसाहब एक रोज़ उधरसे गुजरे तो बुढ़ियाने कूड़ा न डाला। हज़रत-के मनमें कौतूहल हुआ--आज क्या बात है जो बुढ़ियाने अपना कर्त्तव्य पालन नहीं किया। दरवाज़ा खुलवानेपर मालूम हुआ कि बुढ़िया बीमार है। हज़रत अपना सब काम छोड़ उसकी तीमारदारी (परिचर्या) में लग गये। बुढ़िया हज़रतको देखते ही काँप गई और उसने समझा कि आज उसे अपनी उद्दण्डताओंका फल अवश्य मिलेगा। किन्तु बदला लेनेके बजाय उन्हें अपनी सेवा करते देख, उसका हृदय उमड़ आया और उसने मुहम्मदसाहबपर ईमान लाकर इस्लामधर्म ग्रहण कर लिया।

हज़रतके जीवनमें कितनी ही ऐसी झाँकियाँ है, जिनसे विदित होता है कि सुधारकोंके पथमें कितनी बाधाएँ उपस्थित होती है और उन सबको पार करनेके लिए--विरोधियोंको अपना मित्र बनानेके लिए--उन्हें कितने धैर्य और प्रेममय जीवनकी आवश्यकता पड़ती है। विरोधीको नीचा दिखाने, बदला लेने आदिकी हिंसक भावनाओंसे अपना नही बनाया जा सकता। कुमार्गरत, भूला-भटका, प्रेम-व्यवहारसे ही सन्मार्गपर आ सकता है।

स्वावलम्बी बादशाह

गुलाम-वंशीय नासिरुद्दीन बादशाह अत्यन्त सच्चरित्र और धर्मनिष्ठ था। आजीवन उसने राज-कोषसे एक भी पैसा न लेकर अपनी हस्त-लिखित पुस्तकोंसे जीवन-निर्वाह किया। भारतवर्षका इतना बड़ा बादशाह होनेपर भी, अन्य मुसलमान शासकोंके रिवाजके विपरीत, उसके एक ी पत्नी थी। घरेलू कार्योंके अलावा रसोई भी स्वयं बेगमको बनानी पड़ती थी। एकबार रसोई बनाते समय बेगमका हाथ जल गया तो उसने बादशाहसे कुछ दिनके लिये रसोई बनानेके लिये नौकरानी रख देनेकी प्रार्थना की। मगर बादशाहने यह कहकर बेगमकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी कि—

"राज-कोषपर मेरा कोई अधिकार नही है, वह तो प्रजाकी ओरसे मेरे पास धरोहर-मात्र है। और धरोहरमेंसे अपने कार्योंमें व्यय करना अमानतमें ख़यानत है। बादशाह तो क्या, प्रत्येक व्यक्तिको स्वावलम्बी होना चाहिए। अपने कुटुम्बके भरण-पोषणके लिये स्वयं कमाना चाहिए। जो बादशाह स्वावलम्बी न होगा, उसकी प्रजा भी अकर्मण्य हो जायगी, अतः मैं राज-कोषसे एक पैसा भी नही ले सकता और मेरे हाथकी कमाई सीमित है। उससे तुम्हीं बताओ, नौकरानी कैसे रखी जा सकती है?"

ख़लीफ़ा उमर

हज़रत उमर (द्वितीय ख़लीफ़ा) बहुत सादगी-पसन्द थे। इन्होंने अपने बाहुबलसे अरब, फ़िलस्तीन, रूम, बेतुल मुक़द्दस (शामका एक स्थान) आदिमें केवल १० वर्षमें ही ३६,००० क़िले और शहर फ़तह किये। यह विजयी ख़लीफ़ा सादगीके नमूने थे। राज-कोषसे केवल अपने परिवारके पालनके लिये २० रु० माहवार लेते थे। तंगदस्ती इतनी रहती थी कि कपड़ोंपर आपको चमड़ेका पेवन्द लगाना पड़ता था, ताकि उस स्थानसे दोबारा न फट जाएँ। जूते भी स्वयं गाँठ लेते थे। सिरहाने तकियेकी एवज़ ईंटें लगाते थे। उनके बच्चे भी फटे-हाल रहते थे। इसलिये हमजोली बालक अपने नये कपड़े दिखाकर उन्हें चिढ़ाते थे। एक दिन आपके पुत्र अब्दुलरहमानने अपने लिये नये कपड़े बनवानेके लिये रो-रोकर ख़लीफ़ासे बहुत मिन्नतें की। ख़लीफ़ाका हृदय पसीजा और उन्होंने अगले वेतनमें काट लेनेके लिये संकेत करते हुए दो रुपया पेशगी देनेको लिखा। किंतु कोषाध्यक्ष ख़लीफ़ाका पक्का शिष्य था, अतः उसने यह लिखकर दो रुपये पेशगी देनेसे इनकार कर दिया कि—"काश! इस बीचमें आप इन्तक़ाल फ़र्मा गये—स्वर्गस्थ हो गये—तो यह पेशगी लिए हुए रुपये किस खातेमें डाले जाएँगे? मौतका कोई भरोसा नही, उसे आनेमें देर नही लगती और फिर आपका तो युद्धमय जीवन मृत्युसे खिलवाड़ करनेको सदैव प्रस्तुत रहता है। मै नही चाहता कि आप क़र्ज़दार होकर जाएँ।"

हज़रत उमर इस पर्चेको पढ़कर रो पड़े और कोषाध्यक्षकी इस दूरन्देशीकी बारबार सराहना की। प्यारे पुत्रको अगले माहमें कपड़े बनवा देनेका आश्वासन देते हुए गलेसे लगाया। इन्ही ख़लीफ़ा साहबने अपने इस प्यारे पुत्रको एक अनाथ लड़कीसे बलात्कार करनेपर बेंत लगवाई, जिससे पुत्रकी मृत्यु हो गई थी।

इतनी बड़ी सल्तनतका प्रवन्ध करते हुए और युद्धोंमें व्यस्त रहते हुए भी खलीफा उमर अपनी कमरपर मश्क लादकर अनेक असहाय विधवाओके घरोंमें रोजाना पानी भर आनेके लिये भी समय निकाल लेते थे ।

दयालुता

हज़रत अयूब मुसलमानोंके एक बहुत माने हुए वली हुए है । वे बड़े दयालु थे । उनके सीनेमे ज़ख़्म हो गये थे और उनमें कीड़े पड़ गये थे । एक रोज़ आप मदीनेमें एक स्थानपर खड़े हुए थे कि चन्द कीड़े ज़ख़्मसे निकलकर ज़मीनपर गिर पड़े । तब आपने उन कीड़ोंको ज़मीनसे उठाकर दुबारा अपने ज़ख़्ममें रख लिया । लोगोके पूछनेपर हज़रतने फ़रमाया—"कुदरतने इन कीड़ोंकी खुराक यही दी है, अलहदा होनेपर मर जाएँगे । जब हम किसीमें जान नही डाल सकते, तब हमें उनकी जान लेनेका क्या हक़ है ?"

दारुण क्लेशमें महानता

धर्मान्ध और पितृ-द्रोही औरंगज़ेब अपने पूज्य पिता शाहजहाँको क़ैदमें डालकर बादशाह बन बैठा, तो उसने अपना मार्ग निष्कंटक करनेके लिये शुजा और मुराद नामक अपने दो सगे भाइयोंको भी लगे हाथों यमलोक पहुँचा दिया। सल्तनतके असली उत्तराधिकारी बड़े भाई दाराको भी गिरफ्तार करके एक भद्दी और बूढ़ी हथनीकी नंगी पीठपर बिठाकर देहलीके मुख्य-मुख्य बाज़ारोंमेंसे उसको घुमाया गया। कहनेको जुलूस था, पर पैशाचिक तांडव था। जिन बाज़ारोंमें दारा युवराज और स्थानापन्न सम्राट्की हैसियतसे कभी निकलता था, वहीं वह पराजित और बन्दीके रूपमें अपनी प्रजाके सामने इस ज़िल्लतसे घुमाया जा रहा था कि ज़मीन फट जाती तो उसमें समा जाना वह अपना गौरव समझता।

दोपहरकी कड़ी धूप, हथनीकी नंगी पीठ, क़ैदीका वेश, और फिर प्रजाके भारी समूहसे गुज़रना, दाराको सहस्र बिच्छुओंके डंकसे भी अधिक पीड़ा दे रहा था। वह रास्ते भर नीची नजर किए बैठा रहा, भूलकर भी पलक ऊपर न किए। एकाएक ज़ोरकी आवाज़ आई—

"दारा! जब भी तू निकलता था, खैरात करता हुआ जाता था, आज तुझे क्या हो गया है? क्या तेरी उस सखावतसे हम महरूम रहेंगे?"

दाराने नेत्र उठाकर एक पागल फ़क़ीरको उक्त शब्द कहते हुए देखा। चट कन्धेपर पड़ा हुआ दुपट्टा उसकी ओर फेंक दिया और फिर नीची नज़र करली।

फ़क़ीर "दारा ज़िन्दाबाद!" के नारे लगाता हुआ नाचने लगा। प्रजा दाराके इस साधुवादपर आँसू बहाने लगी। उसने उस आपत्तिके समय भी अपने दयालु और दानी स्वभावका परिचय दिया।

अकबरकी विशालहृदयता

पानीपतकी दूसरी लड़ाईमें हेमू युद्ध करता हुआ अकबर बादशाहके सेनापति-द्वारा बन्दी कर लिया गया। बन्दी अवस्थामें वह अकबर के समक्ष लाया गया। उस समय अकबरकी आयु केवल १३ वर्षकी थी। पुरातन प्रथाके अनुसार अकबरको हेमूका वध करनेके लिये कहा गया, किन्तु उसने यह कहकर कि—

"निःसहाय और बन्दी मनुष्यपर हाथ उठाना पाप है।"

प्राण लेनेसे इनकार कर दिया। बालक अकबरकी इस दूरदर्शिता और विशालहृदयताकी उपस्थित जनसमूहने मुक्तकंठसे प्रशंसा की। अकबर अपने ऐसे ही लोकोत्तर गुणोंके कारण इस छोटी-सी आयुमें काँटो-का ताज पहनकर विशाल साम्राज्य स्थापित कर सका था।

नादिरशाहका एक गुण

नादिरशाह एक साधन-हीन दरिद्र परिवारमें जन्म लेनेपर भी महान् विजेता हुआ है। वह आपत्तियोंकी गोदमें पलकर दुःख-दारिद्रयके हिण्डोलोंमें झूलकर एक ऐसा विजेता हुआ है कि विजय उसके घोड़ोंके टापकी धूलके साथ-साथ चलती थी। यद्यपि वह स्वभावसे ही क्रूर, रक्त-लोलुप मनुष्य था फिर भी स्वावलम्बन उसमें एक ऐसा गुण था, जिसने उसे महान् सेनापतियोंकी पंक्तिमें बैठने योग्य बना दिया था। वह आत्म-विश्वासी था, वह दूसरोंका मुँहदेखा न होकर अपने बाहुओंका भरोसा रखता था। उसने दूसरोंकी सहायतापर अपनी उन्नतिका ध्येय कभी नही बनाया, और न अपने जीवनकी बागडोर किसीको सौंपी। जिस कार्यको वह स्वयं करनेमें अपनेको असमर्थ पाता, उसको उसने कभी हाथ तक न लगाया।

देहली-विजय करनेपर विजित बादशाह मुहम्मदशाह रँगीलेने उसे हाथीपर सवार कराके देहलीकी सैर करानी चाही। नादिरशाह इससे पहले कभी हाथीपर न बैठा था, उसने हाथी भारतमें ही आनेपर देखा था। हाथीके हौदेमें बैठनेपर नादिरशाहने आगेकी ओर झुककर देखा तो हाथीकी गर्दनपर महावत अंकुश लिये बैठा था।

नादिरशाहने महावतसे कहा—"तू यहाँ क्यों बैठा है? हाथीकी लगाम मुझे देकर तू नीचे उतर जा।"

महावतने गिड़गिड़ाते हुए अर्ज किया—"हुजूर! हाथीके लगाम नहीं होती। बेअदबी मुआफ़, इसको हम फ़ीलवान ही चला सकते है।"

"जिसकी लगाम मेरे हाथमें नही मैं उसपर नही बैठ सकता। मैं अपना जीवन दूसरोंके हाथोंमें देकर ख़तरा मोल नही ले सकता।" यह कहकर नादिरशाह हाथीपरसे कूद पड़ा! जो दूसरोंके कन्धेपर बन्दूक

रखकर चलानेके आदी हैं या जो दूसरोंके हाथकी कठपुतली बने रहते हैं, नादिरशाह उनमेंसे नही था ! यही उसके जीवनका एक सबसे बड़ा गुण था ।

जवाँमर्द

दारा मुसलमान होते हुए भी सर्वधर्म-समभावी था । उसके हृदयमें अन्य धर्मोंके प्रति भी सम्मान था । वह जितना ही दयालु और स्नेहशील था, उतना ही वीर प्रकृतिका भी था । शत्रुके हाथों भेड़ोकी तरह मरना उसे पसन्द नही था । वह औरंगजेब द्वारा बन्दी बनाए जाने पर कमरेमें बैठा हुआ चाक़ूसे सेब छील रहा था कि औरंगजेबकी ओरसे उसका वध करनेके लिये घातक आये । घातकोंको आते देख उसने प्राण-भिक्षाके लिये गिड़गिड़ाना पाप समझा और चुपचाप आत्म-समर्पण करना कायरता जानी । तलवार न होनेपर भी सेब छीलनेवाले चाक़ूसे ही आत्म-रक्षाके लिये तैयार हो गया और अन्तमें आक्रमणको रोकनेका प्रयत्न करता हुआ जवाँमर्दोकी तरह मरकर वीरगतिको प्राप्त हुआ ।

हृदयकी स्वच्छता

शेख़ इब्राहीम 'ज़ौक़' उर्दूके एक बहुत प्रसिद्ध कवि हुए हैं। वे मुग़लवंशके अन्तिम बादशाह बहादुरशाह 'ज़फर' के कविता-गुरु थे। आज भी भारतवर्षमें हजारों उर्दूके प्रसिद्ध कवि उनके शिष्य और परशिष्य हैं। उर्दू-शायरीमें महाकवि 'जौक़' अपना नाम अमर कर गये हैं। आप मुसलमान थे। एक बार अपने शागिर्दोंके साथ बैठे हुए आप बातचीत कर रहे थे कि उनके सिरपर चिड़िया बार-बार आकर बैठने लगी। आपने तंग आकर हँसीमें फ़र्माया--

"नादानोंने मेरी पगड़ीको घोंसला समझ लिया है।"

उस्तादकी इस बातसे सब खिलखिलाकर हँस पड़े। वहीं एक नाबीना (नेत्रहीन) शिष्य भी बैठा हुआ था। उसे जब हँसीका कारण मालूम हुआ तो बोला—"उस्ताद! हमारे सरपर तो चिड़िया एक बार भी आकर नहीं बैठी।"

शागिर्दकी बात सुनते ही महाकवि 'जौक़' बोले--"क्या वे जानती नहीं हैं कि तू क़ाज़ी है, कलमा पढ़कर चट हलाल कर देगा।"

उस्तादकी बात सुनी तो हँसीका फ़व्वारा छूट पड़ा। नाबीना शागिर्द भी झेंपता हुआ हँस दिया।

शागिर्दोंने अर्ज किया--"उस्तादने क्या खूब फ़र्माया है। बेशक दिलसे दिलको राहत होती है। अपने दोस्त-दुश्मनकी पहचान जानवरोंको भी होती है। साँप बच्चेके छेड़नेपर भी उसके साथ खेलता रहता है, मगर जवान इन्सानको जरा-सी भूलपर भी काट खाता है। बुग्ज़ोहसदसे पाक (राग-द्वेषरहित) फ़क़ीरोंके पास शेर और हिरन चौकड़ियाँ भरते हैं, उनके तलवे प्रेमसे चाटते हैं मगर शिकारीको छुपे हुए देखकर भी भाग जाते हैं या मुक़ाबिलेको तैयार हो जाते हैं। गाय क़साईके हाथ बेचे जानेपर डकराती है, मगर किसी रहमदिलके छुड़ा लेनेपर अहसान भरी नज़रोंसे देखती है। इन्सानका चेहरा मानिन्द आइने (दर्पण) के है। उसमें खरे-खोटेका अक्स (प्रतिबिम्ब) हर वक़्त झलकता रहता है।"

चतुर मंत्री

बादशाह महमूद ग़ज़नवी और उसका वज़ीर किसी जंगलसे गुजर रहे थे कि एक वृक्षपर दो उल्लुओंको एक-दूसरेकी ओर मुँह किये हुए बैठे देखा। वजीरको छेड़नेकी नीयतसे बादशाह बोला––

"वजीर! सुना है आप उल्लुओंकी बोली समझ लेते हैं?" बादशाहके मजाक़का आशय था कि जानवरोंकी बोली जानवर ही समझते हैं। परन्तु वज़ीर भी अत्यन्त चतुर और हाज़िर-जवाब था। उसने दस्तवस्ता अर्ज़ की––"क़िबलये आलम! ख़ुदाकी इनायतसे समझ तो लेता हूँ, मगर इस वक़्त जो ये नाहंजार गुफ़्तगू कर रहे है, उस तरफ तवज्जह न फ़र्माई जाय तो बेहतर है।" वजीरकी संजीदगी और लबोलहजे से उसे यक़ीन हो गया कि वह जानवरोंकी बोली समझ लेता है और वह यह भूल गया कि उसने छेड़नेकी नीयतसे जुमला कसा था। बादशाहने गुफ्तगूका सारांश बतानेके लिये जब बहुत ज़्यादा इसरार किया तो वज़ीर बोला––

"ख़ुदावन्दा! जानकी अमान मिले तो गुफ़्तगूका निचोड़ बतानेकी गुस्ताखी करूँ।"

"जान बख़्शी गई।"

"जहाँपनाह! इनमें एक लड़कीवाला और दूसरा लड़केवाला है। लड़कीवालेने अपनी दोशीज़ाकी शादी उसके लड़केसे करनेकी ख़्वाहिश ज़ाहिर की तो उसने दहेजमें ५०० उजाड़ गाँव तलब किये।..."

"अच्छा फिर? कहे जाओ, डरो मत।"

"ग़रीब परवर! बेअदब लड़कीवालेने जवाब दिया––"जानते नहीं आजकल किसका राज है? उजाड़ गाँवोंकी अब क्या कमी? आप रिश्ता तो मंजूर करें। ५०० गाँव नही मैं १००० उजाड़ गाँव दहेज़में दूंगा।"

वज़ीर कहनेको तो कह गया, परन्तु वह इस तरह काँपने लगा, जैसे उसकी रूह फ़ना हुई जा रही है। बादशाह वज़ीरके व्यंगको समझ गया। वह आत्मग्लानि समेटते हुए बोला--

"वज़ीर! डरो नही, मुझे तुम्हारे-जैसे ही वज़ीरोंकी ज़रूरत है। हम हरगिज़ इन उल्लुओंकी मुराद पूरी न होने देंगे। अब ज़िन्दगीका हर-लमहा गाँवोंके उजाड़नेमें नही, उन्हें आबाद करनेमें सर्फ़ होगा। काश मेरी आँखें पहले ही खुल गई होती।"

गधेकी लात

मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दूके अमर शायर हुए हैं। उनके विरोधियोंने कुछ असभ्यतापूर्ण पत्र भेजे तो वे पढ़कर चुप हो गये। शिष्योंने जवाब देनेके लिये इशारा किया तो फर्माया--"अगर कोई गधा तुम्हें लात मारे तो तुम भी उसे क्या लात मारोगे ?"

दयालु वज़ीर

नादिरशाह क़त्लेआमका हुक्म देकर देहली-चाँदनीचौककी सुनेहरी मस्जिदमें तलवार बग़लमें रखकर क़ुरानकी तलावत करने बैठ गया। क़त्लेआमसे दिल्ली भरमें हा-हाकार मच गया। सड़कें लाशोंसे पट गईं। पानीकी नालियाँ लाल हो गई, चप्पे-चप्पेपर इन्सान सिसकते नज़र आने लगे। यह राक्षसी कृत्य एक वज़ीरसे न देखा गया। वह काँपते-काँपते सुनेहरी मस्जिदमें गया। मगर ज़ालिम ख़ूँख़्वार और ज़िद्दी नादिरशाहसे क़त्लेआमका हुक्म वापिस लेनेकी प्रार्थना करना अपनी जानसे भी हाथ धो बैठना था। आख़िर दयालु वज़ीरको एक युक्ति सूझ पड़ी। उसने अमीरख़ुसरोका यह शेर बादशाहसे अर्ज़ किया—

कसे न मान्द कि दीगर बतेग़े नाज कुशी।
मगर कि ज़िन्दा कुनी ख़ल्क़रा व बाज कुशी॥

"कोई आदमी नही बचा। सब तुम्हारी क़हरकी निगाहके शिकार हो गये। निगाहे नाज़की तलवारसे सबको मार डाला। अब निगाहके लुत्फसे लोगोंको ज़िन्दा करो तो उन्हें फिर मारा जाय।" बादशाह इस शेरको सुनकर बहुत व्याकुल हुआ और उसने तत्काल क़त्लेआमका हुक्म वापिस ले लिया।

पुरुषार्थ

एक बार हज़रत मुहम्मदसे एक व्यक्तिने अपनी निर्धनताका उल्लेख करते हुए आर्थिक सहायताकी याचना की। हज़रत थोड़ी देर तो चुप रहे, फिर सोचकर फ़र्माया—"तुम्हारे पास क्या-क्या चीज़ मौजूद है ?"

निर्धन—मेरे पास एक बोरिया है, जिसके आधे हिस्सेको ओढ़ता हूँ और आधेको बिछाता हूँ, और एक पियाला है, जिससे पानी पीता हूँ।

हजरत—जाओ, वोह प्याला और वोरिया ले आओ।

जब वह ग़रीब वोरिया और प्याला ले आया तो आपने उसे दो दिरम में नीलाम कर दिया और वे दोनों दिरम उसे देते हुए आदेश दिया—

"एक दिरमका अन्न घरमें डालो और दूसरेकी कुल्हाड़ी ख़रीदकर मेरे पास लाओ।"

जब वह कुल्हाड़ी ख़रीदकर आया तो आपने फ़र्माया—"जाओ लकड़ियाँ काट-काटकर बेचो और १५ रोज़ तक मेरे पास न आओ।"

१५ रोज़के बाद वह ग़रीब आया तो कमाये हुए १० दिरम हज़रतके चरणोंमें डालकर बड़े अदबसे एक तरफ़ खड़ा हो गया। हज़रतका मुँह प्रसन्नतासे खिल उठा और उसे इसी तरह पुरुषार्थपूर्वक जीवन व्यतीत करते रहनेको प्रोत्साहन दिया।

जिहाद और रोज़गार

इस्लाममें जिहादको बहुत महत्त्व दिया गया है। उसके लिये तैयार रहना हर मुसलमानका प्रथम कर्त्तव्य बतलाया गया है, किन्तु रोज़गार को जिहादपर भी तरजीह दी गई है; क्योंकि भूखा रहकर मनुष्य कोई काम नही कर सकता।

एक बार हज़रत उमर मस्जिदमें तशरीफ़ लाये तो देखा एक आदमी जनताको जिहादके लिये उभार रहा है। हज़रत उसकी स्थितिसे भाँप गये कि यह आर्थिक संकटसे तंग आकर जिहादके लिये मजबूर हुआ है; क्योंकि अर्थाभाव भी बहुतसे विद्रोह और अनैतिक कार्य्योंका जनक होता है। यदि देशमें अर्थसंकट दूर न किया जाय और भूखकी ज्वालाको यूँ ही सुलगते रहने दिया जाय तो, यह समूचे देशको भस्मसात् कर देती है।

अतः हज़रतने उसका हाथ पकड़कर जनतासे कहा––"आपमेंसे क्या कोई आदमी इसे नौकरी दे सकता है ?"

एक व्यक्तिके स्वीकृति देनेपर आपने उसे उसके हवाले कर दिया। थोड़े दिनके बाद हज़रतने उसे बुलाया तो मालूम हुआ कि उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी हो गई है। तब आपने फ़र्माया––

"अब तुम चाहे जिहाद करो, या इन्सानी फ़राइज़ अदा करो, या अपने बच्चोंकी परवरिश करो, ख़ुदमुख़्तार हो।"

आजीविका और परिश्रमपर इस्लाममें बहुत ज़ोर दिया गया है। एक हदीसका अनुवाद इस प्रकार है––

"अगर क़यामत क़ायम हो जाये उस हालमें कि तुम ज़मीनमें खजूर-का पौदा नस्ब करनेके लिये झुके हुए हो, तो उस वक़्त तक खड़े न हो जबतक वोह पौदा नस्ब न कर लो।"

ईसाका आदर्श

महात्मा ईसा बैठे हुए दीन-दुखी और पतित प्राणियोंके उत्थानका उपाय सोच रहे थे कि उनके कुछ अनुयायी एक स्त्रीको पकड़े हुए आये और बोले--

"प्रभो ! इसने व्यभिचार-जैसा निंद्य कर्म किया है। इसलिये पत्थर मार-मारकर इसके प्राण लेने चाहिएँ।"

महात्मा ईसाने अपने अनुयायियोंका यह निर्णय सुना तो उनका दयालु हृदय भर आया, रुँधे कण्ठसे बोले--"आपमेंसे जिसने यह निंद्य कर्म न किया हो, वही इसको पत्थर मारे।"

महात्मा ईसाका आदेश सुना तो मानों शरीरको लक़वा मार गया। नेत्र ज़मीनमें गड़े-के-गड़े रह गये। उनमें एक भी ऐसा नहीं था, जिसके पर-स्त्रीके प्रति कुविचार स्वप्नमें भी उत्पन्न न हुए हों। सारे अनुयायी उस स्त्रीको पकड़े हुए मुँह लटकाये खड़े रहे। तब महात्मा ईसाने करुणाभरे स्वरमें कहा--

"मुमुक्षुओ ! पतितों, दुराचारियों और कुमार्गरतोंको प्रेमपूर्वक उनकी भूल सुझाओ, वे तुम्हारी दयाके पात्र हैं। औरोंके दोष देखनेसे पूर्व अपनी तरफ़ भी देख लेना चाहिए।"

लार्ड विलिंगटन

वास्तवमें बचपनके ही संस्कार भविष्यमें भाग्य-निर्माता होते है। होनहार बालकोंकी आभा उनके उदय होनेके पूर्व ही सूर्य-रेखाओके समान फैलने लगती है। वे इसी अवस्थामें खेले हुए खेल, हँसी-हँसीमें किए गये संकल्प बड़े होनेपर कार्यरूपमें परिणत कर दिखाते है।

एक बार बालक विलिगटनसे किसीने पूछा--"यह टाइमपीस क्या कहती है ?"

अबोध विलिगटनने उत्तर दिया--"क्लौक सेज़ दी टन, टन, टन एण्ड विलिगटन वुड बी दी लार्ड ऑफ लण्डन (घड़ी कहती है, टन, टन, टन और लण्डनका लार्ड बनेगा विलिगटन)।"

बालक विलिगटनकी यह भविष्यवाणी आखिर सत्य निकली।

संकटमें धैर्य

दूर पहाड़ीपर बैठा हुआ नेपोलियन युद्ध-संचालन कर रहा था। उसके सिपाहियोंके पाँव उखड़ चुके थे। उपसेनापति चाहते थे कि नेपोलियन पीछे हटने अथवा युद्ध बन्द करनेके लिये संकेत दे-दे तो बेहतर। वरना आज पराजय अवश्यम्भावी है। यह बात सुझानेको एक उपसेनापति नेपोलियनके पास गया और ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये उसने ८-१० प्रकारके बढिया-घटिया सिगार एक केसमें रखकर नेपोलियन के सामने पेश किये। नेपोलियनने युद्धकी ओर दृष्टि किये हुए ही उनमेंसे सर्वश्रेष्ठ सिगार उठा लिया। उपसेनापतिकी ओर देखा तक भी नहीं। उपसेनापति प्रसन्न मुख वहाँसे लौट आया। उसने सोचा--

"जो ऐसे संकटके समयमें भी इतना धैर्य रखता है कि उसका मस्तिष्क घटिया-बढ़ियाके विवेकको भूल नही गया है, वह अवश्य विजयी होगा।" और सचमुच नेपोलियनकी सेनाको उस युद्धमें विजय मिली।

कर्त्तव्य-पालन

अमेरिकामें एक बार कुछ भद्र पुरुष लोकहितके कार्य सोचनेको एक कमरेमें एकत्र हुए। उस समय आँधी, वर्षा और भूकम्पने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि लोगोंने उसे प्रलय समझा। उपस्थित समूहमेंसे एकने कहा--

"अब हमें समस्त कार्य छोड़कर ईश्वर-चिन्तन करते हुए मृत्युका आलिगन करना चाहिए।"

यह बात सुनकर अध्यक्षने तुरन्त उत्तर दिया--"नही, हम जिस कार्यके लिये जमा हुए है, हमे वही करते रहना चाहिए। हमें अपना कर्त्तव्य-पालन करते रहना चाहिए। प्रलय आ रही है, हमें मरना है, इस चिन्तामे नही पड़ना चाहिए। ईश्वर-चिन्तनसे ईश्वरके आदेश पालन करते हुए उसकी सृष्टिकी सेवा करते हुए मरना कही अधिक श्रेष्ठ है। मृत्यु आ रही है, इस भयसे अकर्मण्य होकर ईश्वर-ईश्वर जपनेकी अपेक्षासे श्वास रहे तब तक कर्त्तव्यपालनमें जुटे रहना ही हमारा कर्त्तव्य है।"

राज्य-वैभव और निःस्पृहता

सिकन्दर महान्के शासनकालमें एक 'डाओजिनीस' (Diogenese) निःस्पृही व्यक्ति हुआ है। न कोई परिग्रह, न कोई कामना, हर समय आनन्दविभोर रहता था। सिकन्दरने जब उसकी ख्याति सुनी तो उसे भी मिलनेकी अभिलाषा हुई, किन्तु दरबारी डाओजिनीसके स्वभावसे परिचित थे। न वह किसी राजाके दरबारमें जाता था, न किसी रईसको ख़ातिरमें लाता था। अपनी धुनमें मस्त रहता था। इसीलिये लोग उसे 'मिराकी' कहा करते थे। अतः किसी दरबारीका यह साहस नहीं हुआ कि वह डाओजिनीस मिराकीको सिकन्दरके दरबारमें लानेका ज़िम्मा ले सके। आखिर सिकन्दर स्वयं ही उससे मिलने गया। डाओजिनीस आरामसे धूपमें लेटा हुआ था। सिकन्दरके पहुँचनेपर भी वह लेटा ही रहा। उस महान् सम्राट्की अभ्यर्थना करना तो एक तरफ, उसने उसकी तरफ़ देखना भी उचित न समझा। सिकन्दरने रोबीले स्वरमें कहा—

"मैं सिकन्दर महान् हूँ"।

डाओजिनीसने लापरवाहीसे जवाब दिया—"और मुझे लोग डाओजिनीस मिराकी कहते है।" सिकन्दर इस जवाबसे हतप्रभ-सा हो गया। वह नम्रतापूर्वक बोला—"क्या मै आपकी कोई सेवा कर सकता हूँ।"

डाओजिनीसपर इस प्रलोभनका क्या खाक असर होता, वह उपेक्षाभावसे बोला—"हाँ, इतना करो जरा मेरी धूप छोड़कर परे खड़े हो जाओ।"

सिकन्दर अपना-सा मुँह लेकर रह गया, और जाते हुए बोला— "अगर मैं सिकन्दर महान् न हुआ होता तो अवश्य ही डाओजिनीस मिराकी बनानेकी भगवान्से प्रार्थना करता।"

निःस्पृही और निस्वार्थ व्यक्तिको संसारकी महान्-से-महान् शक्ति भी नतमस्तक नहीं कर सकती।

सद्व्यवहार

सिकन्दरका प्रतिद्वन्द्वी पोरस रणक्षेत्रमें जीवित पकड़े जानेपर सिकन्दरके सामने लाया गया। सिकन्दरने क्रुद्ध होकर कहा—

"बता, तेरे साथ मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए ?"

पोरसने सीना ताने हुए वीरोचित स्वरमें उत्तर दिया—"जैसा बादशाहको बादशाहके साथ करना चाहिए।"

उत्तर सुनकर सिकन्दर क्षण भरको निस्तब्ध रह गया और तत्काल पोरसको मुक्त कर दिया। जो पोरस तिल-तिल टुकड़े कर देनेपर भी न झुकता, वही पोरस सिकन्दरके इस सद्व्यवहारसे उसका गुलाम बन गया।

एब्राहाम लिंकन

अमेरिकाके राष्ट्रपति मि० एब्राहाम लिंकन अपने अनेक लोकोत्तर गुणोंके कारण काफ़ी प्रसिद्ध हुए है। एक बार जाते हुए मार्गमें उन्होंने कीचड़में एक बीमार सूअरको फँसे हुए देखा। देखकर भी वे रुके नही, आगे बढ़े चले गये; किन्तु थोड़ी दूर जानेके बाद वे पुनः वापिस लौटे और अपने हाथोसे कीचड़से सूअरको निकाला। लोगोंने हैरानीसे इसका सबब पूछा तो वे बोले—

"मै आवश्यक कार्यमें व्यस्त होनेके कारण इसे कीचडमें फँसा हुआ देखकर चला तो गया, पर मेरे हृदयमें एक वेदना-सी बनी रही, मैंने उसी वेदनाको दूर करनेके लिये इसे निकाला है। दुखियोंको देखकर हमारे हृदयमें जो टीस उठती है, उसीको मिटानेके लिये हम दुखियोंका दुःख दूर करते है। इसमें उपकार और अहसानकी क्या बात है?"

डेपुटेशन

जिस यूनानने संसार-विजेता सिकन्दर महान्‌को जन्म दिया, जिस यूनानने अरस्तू, अफ़लातूँ, और लुक़मान—जैसे नर-रत्न प्रसव किये, और जो यूनान अपने अलौकिक चमत्कारसे संसारको चकाचौंध कर रहा था, वही यूनान भाग्यके फेरसे एक समय टर्कीके अधीन हो गया। यूनानके परतन्त्र होते ही उसकी समस्त खूबियाँ कपूरकी भाँति शनैः शनैः विलीन होने लगी, और विजेताओंके अवगुण गुड़पर मक्खीके समान यूनानियोंसे चिमटने लगे। पराधीन यूनानी लोहेके कटघरेमें फँसे हुये शेरकी मानिन्द सब कुछ सहनेके आदी हो गये, किन्तु टर्की-सरकार द्वारा एक नवीन क़ानून प्रचलित होते देख, उनकी आत्माएँ तड़प उठी, मानो कबूतरोंके कायर शरीरोंमें बाजकी शक्ति उत्पन्न हुई। इस अत्याचारके विरोधमें यूनानवालोंने आवाज उठाई और न्यायकी प्रार्थना करनेके लिये यूनानी प्रमुखोंका एक डेपुटेशन टर्की गया।

टर्की सरकारकी ओरसे डेपुटेशनको शहरके बाहर एक विशाल भवनमें ठहराया गया। उसका यथोचित स्वागत किया गया और उसकी प्रार्थनापर नवीन कानून रद्द कर दिया गया। अभिलाषा पूर्ण हुई देखकर डेपुटेशनके सदस्योंकी बाँछें खिल गई। उन्होने कुछ आत्म-गौरवका अनुभव किया और समझा कि हमसे भी कुछ मातृ-भूमिकी सेवा हो पाई है।

बातोंके सिलसिलेमें यूनानी प्रमुखने टर्की-सचिवसे कहा—"आपने हमारी अभिलाषा पूर्ण करके यूनानको चिर ऋणी बना लिया है। हम आपके इस सद्व्यवहारके लिये अत्यन्त कृतज्ञ है। यह सब कुछ तो हुआ; पर जब हम लोग यहाँ आये है, तब क्या हमें अन्दरसे शहर देखनेकी सुविधा नहीं दीजियेगा। हम देखते है कि हमारे चारों ओर एक गुप्त पहरा-सा लगा हुआ है, मानो हम आज्ञा प्राप्त किये बगैर यहाँसे बाहर भी नहीं जा सकते।"

सचिव मुस्कराकर बोला--"नही साहब, पहरा कैसा ? यह सब तो आपके आत्म-रक्षक है। आप यूनान जानेमें सर्वथा स्वतन्त्र है।"

डेपुटेशनका एक सदस्य चुटकी लेनेकी ग़रज़से बोला--"बेअदबी मुआफ़ ! हम यूनान जानेमें तो स्वतन्त्र है, किन्तु टर्की देखनेमें शायद परतन्त्र है ?"

सचिवका खिला हुआ चेहरा गम्भीर हो गया, वह प्रसंगको बदलनेकी नीयतसे इधर-उधर करने लगा, किन्तु यूनानी प्रमुखोंके पुनः आग्रह करनेपर सकुचाते हुए बोला--

"क्षमा कीजिये, आप फिर कभी जब चाहें शहर देख सकते है, परन्तु इस समय नही, क्योकि आप डेपुटेशन लेकर आये है। हमारे यहाँके बालक, युवा, वृद्ध अभीतक यही समझते है कि अधिकार बाहु-बल और आत्म-बलसे प्राप्त होते है। आपको देखकर वह यह सीख जाएँगे कि अधिकार और न्याय भीख माँगनेसे भी मिल जाते है। तब वह भी अकर्मण्य और मोहताज हो जाएँगे।"

सचिवके उक्त शब्द थे या बिजली, यूनानके प्रमुख यंत्र-कीलित साँपकी तरह गड़ेसे रह गये।

मोहजाल

विश्व-विजेता सिकन्दर जब मृत्यु-शय्यापर पड़ा छटपटा रहा था, तब उसकी माँने रुँधे हुए कण्ठसे पूछा--

"मेरे लाड़ले लाल ! अब मैं तुझे कहाँ पाऊँगी ?"

सिकन्दरने बूढी माँ को सान्त्वना देनेकी नीयतसे कहा--"अम्मीजान ! सत्रहवीवाले रोज़ मेरी क़ब्रपर आना, वहाँ मैं तुझे अवश्य मिलूँगा ।"

माँकी मोहब्बत, बड़ी मुश्किलसे १७ रोज कलेजा थामकर बैठी रही। आखिर १७ वी वाले दिन, रातके समय क़ब्रपर गई। कुछ पाँवों की आहट पाकर बोली--

"कौन ? बेटा सिकन्दर ?"

आवाज़ आई--"कौन-से सिकन्दरको तलाश करती है ?"

माँने कहा--"दुनियाके शाहंशाह, अपने लख्ते-जिगर सिकन्दरको, उसके सिवा और दूसरा सिकन्दर है कौन ?"

अट्टहास हुआ और वह पथरीली राहोंको तय करता हुआ, भयानक जंगलोको चीरता हुआ पर्वतोंसे टकराकर विलीन हो गया।

धीमेसे किसीने कहा--"अरी बावली, कैसा सिकन्दर ! किसका सिकन्दर ! कौनसा सिकन्दर ! यहाँके तो ज़र्रे-ज़र्रेमें हज़ारों सिकन्दर मौजूद है !"

वृद्धा माँकी मोहनिद्रा भंग हुई।

चन्द्रगुप्त

भारतका प्रथम ऐतिहासिक सम्राट् चन्द्रगुप्त—जिसने यूनानियोंकी पराधीनतासे भारतको मुक्त किया था, जिसके बल-पराक्रमका लोहा सारे संसारने माना और जिसकी शासन-प्रणालीकी कीर्त्ति आज भी गूँज रही है, राज्यवैभवमें उत्पन्न न होकर एक अत्यन्त साधारण स्थितिमें उत्पन्न हुआ था। गाँवकी गाएँ चराना और खेलना यही उसका दैनिक कार्य था; किन्तु बचपनमें ही उसके शुभ लक्षण प्रकट होने लग गये थे।

वह खेलनेमें स्वयं राजा बनता, किसीको मंत्री, किसीको कोतवाल, किसीको चोर वग़ैरह बनाता। चोरोंको दण्ड और सदाचारियोंको इनाम देता। ज़रा भी उसकी आज्ञा पालनमें हील-हुज्जत की जाती तो वह अधिकारपूर्ण शब्दोंमें कहता—

"यह राजा चन्द्रगुप्तकी आज्ञा है, इसका पालन होना ही चाहिए।"

उसका यह आत्म-विश्वास, हौसला और महत्त्वाकाक्षा देखकर भिक्षु-वेषमें चाणक्य बड़ा विस्मित हुआ। उसने कौतुकवश बालक चन्द्रगुप्तके पास जाकर कहा—"राजन्! कुछ हमें भी दान दीजिये।"

बालक चन्द्रगुप्त चाणक्यकी बातसे न झिझका, न शर्माया। उसने राजाओंकी ही तरह आदेश दिया—"सामने जो गाएँ चर रही है, उनमें जो भी तुझे पसन्द हो, ले जा सकता है।"

चाणक्य मुस्कराकर बोला—"महाराजाधिराज! यह गाएँ तो गाँव वालोंकी है, वे मुझे क्यों ले जाने देंगे?"

चन्द्रगुप्तने ज़रा भृकुटी चढ़ाकर कहा—"भोले विप्र! क्या तुम नहीं जानते 'वीर भोग्या बसुन्धरा।' किसकी मजाल है जो मेरे आदेशकी अवहेलना कर सके?"

बालक चन्द्रगुप्तका यह संकल्प सही निकला और वह अपनी युवावस्थामें ही साधन-हीन होते हुए भी सचमुच सम्राट् बन बैठा।

वीर जननी

सिद्धराज चावड़ा काठियावाडका एक अत्यन्त प्रसिद्ध सदाचारी वीर पुरुष हुआ है। किसी मनचले राजाने अपने पुत्रको भी इसी ढंगका बना देनेके लिए अपने राज्य-पण्डितको आदेश दिया। आदेश सुनकर राज्य-पण्डित बोला—"अन्नदाता, आपका पुत्र शिक्षा द्वारा सिद्ध-राजके समान बन तो सकता है, किन्तु उसकी मातामें सिद्धराजकी जननी जैसे गुण भी विद्यमान हैं क्या ?" राजाके पूछनेपर कहा—"जब सिद्ध-राज अबोध बालक था, तब वह एक रोज पालनेमें सो रहा था, उसकी माता उसे झुला रही थी कि अकस्मात् सिद्धराजके पिता बनराज आ गये और वह रानीसे हँसी करने लगे। रानीने कहा—"आप परपुरुषके सामने मेरी लाज गँवाते है, यह क्या ठीक है ?" राजाके पूछनेपर रानी-ने बालककी ओर संकेत कर दिया। बनराजने इसे कुछ भी न समझा और वह और भी छेड़-छाड़ करने लगे। भाग्यकी बात सिद्धराजने जिसकी आयु तब केवल दो माहकी थी, मक्खी वगैरहके बैठनेसे मुँह फेर लिया। रानी चौंकी—"हे भगवान् ! यह सब कुछ बालकने देख लिया और उसने मारे आत्मग्लानिके विष खा लिया।" राज्य-पण्डितसे उक्त घटना सुनकर मनचले राजाकी अपने पुत्रको भी सिद्धराज-जैसा बनानेकी अभि-लाषा विलीन हो गई।

वीरमहिला

आमेरके विख्यात महाराजा जयसिंहने कोटेकी राजकुमारीके साथ विवाह किया था। उस कोटेकी राजबालाका स्वभाव, उसका आचरण और वेशभूषा अत्यन्त सरल और आडम्बरहीन था। परन्तु सभ्य समृद्धिशाली आमेरके रनवासमें रहनेवालीको अन्य राज-रानियों-के समान अत्यन्त मूल्यवान वस्त्र और आभूषण पहनने चाहिएँ। कोटेकी राजकुमारी विलासप्रिय न होकर वीर स्वभावकी थी, वह सदैव स्वच्छ और सादगीसे रहती थी। एक बार महाराजा जयसिंहने कहा—"कोटे-की राजरानियोंकी अपेक्षा हमारे यहाँकी नीच जातिकी स्त्रियाँ भी अच्छे सुन्दर रमणीक वस्त्र और आभूषण पहनती हैं।" कुछ देर पश्चात् एक काँचका टुकड़ा लेकर रानीके पहने हुए वस्त्रोंको काटने लगे। कोटेकी राजकुमारीने यह कृत्य अपनी आत्म-प्रतिष्ठा और स्वाभिमानका घातक समझा। चट पासमें रखी हुई तलवार, उठा ली और गरजकर बोली—"मैंने जिस वंशमें जन्म लिया है, वह राज-वंश कदापि इस प्रकारकी घृणा और उपहासके योग्य नहीं है। आप इस बातको स्मरण रखिये कि स्त्री-पुरुषोंमें पारस्परिक प्रेम, सद्भाव, सम्मान होनेसे दाम्पत्य सुख ही नहीं अपितु धर्मकी भी रक्षा होती है।" फिर उस वीरबालाने कहा—"महाराज! यदि विलासिता चाहते हो, तो वेश्याओंके यहाँ जाओ, मुगलोंकी चौखटें चूमो, मैं वीरबाला हूँ, वीर-वेष पहनना जानती हूँ, रणका साज सजाना जानती हूँ और जानती हूँ, तलवारके हाथ। आओ सामने, तब आप भली प्रकार समझेंगे कि आमेरके राजकुमार काँचके टुकड़ोंको चलानेमें इतने चतुर नहीं हैं, जितनी कोटेकी राजकुमारी तलवारके हाथ चलानेमें निपुण होगी"। विलासी महाराज भौंचक-से रह गये। वीरपत्नीका वीररूप देखकर उनकी विलासिता नष्ट हो गई। वे चरणोंमें गिर गये

और बोले—"देवी ! क्षमा करो, मैंने तुम्हें समझनेमें भूल की। वास्तवमें तुम्हारे जैसी वीरबालाओंसे ही आज आर्य जातिका गौरव है। अन्यथा हमारे जैसे विलासी तो कभीके हिन्दू जातिको रसातलमें भेज चुके होते।"

क्षत्राणीका आदर्श

शाहजहाँके दारा, शुजा, औरंगजेब और मुराद—ये चार लड़के और जहाँनारा तथा रोशनारा यह दो लड़कियाँ थी। शाहजहाँके बीमार पड़ते ही शोणित-लोलुप क्षुधित व्याघ्रकी तरह चारों भाई आपसमें कट मरे। वह शाहजहाँके अन्तिम कालतक मयूर-सिंहासनके लोभको न दबा सके।

शाहजहाँके गिड़गिड़ाकर अनुरोध करनेपर मारवाड़-केसरी राजा यशवन्तसिंह तीस सहस्र राजपूत-सेना लेकर पितृद्रोही औरंगज़ेबका आक्रमण रोकनेके लिए उज्जैन जा पहुँचे। किन्तु कूटनीतिज्ञ औरंगजेब के षड्यन्त्रके सामने उनकी वीरता काम न आई। अन्तमें उन्हें रणक्षेत्रका परित्याग करना पड़ा।

राजा यशवन्तसिंहका शिशोदिया राजकुमारीके गर्भसे जन्म हुआ था और शिशोदिया कुलकी एक वीरबालाके साथ विवाह हुआ था। पवित्र शिशोदिया-कुलमें विवाह कर पानेपर राजपूत राजा अपनेको पवित्र और कृतार्थ समझते थे। राजा यशवन्तसिंहकी स्त्री जैसे ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुई थी उसी प्रकार ऊँचे गुणो और अलंकारोसे विभूषित थी। जब उसने उज्जैनके युद्धका वृत्तान्त सुना कि उसके पतिकी प्रायः समस्त सेना नष्ट हो गई है और वह शत्रुका पराजय न कर रण-भूमिसे चला आया है, तब उसको विषम क्रोध और दारुण दुःख हुआ। वह मारे आत्मग्लानिके रो पड़ी और उसी आवेशमें सोचने लगी——

"न जाने मेरे कौन-से पाप कर्मका उदय है, जो मुझे ऐसा क्षत्रियकुल-कलंकी पति मिला। अच्छा होता जो मैं विवाही न जाती, कायरपत्नी तो न कहलाती। विषपान कर लूँगी, जीते जी आगमें कूदकर प्राण दे दूँगी, किन्तु कायर-पत्नी न कहलाऊँगी। जब कि मेरे पूर्वज, शरीरमें रक्तकी

एक बूँद रहने तक, शत्रुओंका मान मर्दन करते रहे है, तब मेरा पति शत्रुके भयसे भागकर आवे और मै उसे छुपा लूँ ? वीर-दुहिता होकर कायर-पत्नी कहलाऊँ ? लोग क्या कहेंगे ? सहेलियाँ ताना मारेगी और पिताजी तो मेरा मुँह देखना भी पाप समझेंगे । ओह, हृदयमें कैसी-कैसी उमंगें थी । विजयी होकर आयेंगे, आरती उतारूँगी, उनकी चरण-रज लेकर सुहागकी चूनरीमें बाँधूँगी, तलवारका रक्त लेकर मँहदी रचाऊँगी, उनके जख्मोंको अपने हाथसे धोऊँगी, उनके शत्रु-संहार-रण-कौशलको सुनकर मै आपेमें न रहूँगी, मारे गर्वके मेरी छाती फूल उठेगी । दोनों मिलकर मातृ-भूमिकी वन्दना करेगे । किन्तु यह सब स्वप्न था, जो अन्धेरी रात्रिके सन्नाटेमे देखा गया था । आह ! युद्ध-भूमिमें वीर-गति को भी प्राप्त न हुए, नही तो साथमे सती होकर जीवन सुधार लेती ।"

रोते-रोते शिशोदिया राजकुमारीके मुखमण्डलने भयावनी मूर्त्ति धारण करली । वह सर्पिणीके समान फुँफकार कर बूढ़े द्वारपालसे बोली—"मै कायर पतिका मुँह देखना नही चाहती । इस वीर-प्रसवा भूमिमें रण से भयभीत मनुष्यको आनेका अधिकार नही, अतएव मेरी आज्ञासे किले के दरवाजे वन्द कर दो ।"

द्वारपाल थर-थर काँपने लगा, उसकी बुद्धिको काठ मार गया । वह गिड़गिड़ाकर बोला—"महारानीजीका सुहाग अटल रहे । मैं आपकी आज्ञा-पालनमें असमर्थ हूँ, वह हमारे महाराजा है, जीवनदाता है ।"

रानी—नही ! अब वह जीवनदाता नहीं । जो प्राणोके भयसे भागकर स्त्रीके आँचलमें छपे, वह जीवनदाता नही । जीवनदाता वह है, जो सर्वसाधारणके हितार्थ अपना जीवनदान करनेको सदा प्रस्तुत रहे ।

द्वार०—महारानीजी ! वह हमारे अन्नदाता हैं ।

रानी—असम्भव ! जो दासत्व-वृत्ति स्वीकार कर चुका है, परतन्त्रताके बन्धनमें जकड़ा जा चुका है, जो दूसरेकी दी हुई सहायतासे अपनेको सुखी समझता है, वह अन्नदाता नहीं ।

द्वार०––वह परतन्त्र नहीं, अपितु यवन बादशाहके दाहिने हाथ हैं।

रानी––वह भी किसलिये? अपने देशवासियोंको नीचा दिखानेके लिए मायावी यवन बादशाह काँटेसे काँटा निकालना चाहता है।

द्वार०––अर्थात्?

रानी––यही कि वह कुछ राजपूतोंको अपने पक्षमें करके भारतके समस्त राजपूतोंको शिखंडी बनाना चाहता है। भारतके हाथों भारत-सन्तानका पतन चाहता है। भोले द्वारपाल! याद रक्खो, स्वामी सेवकका चाहे जितना आदर क्यों न करे, चाहे मणिमुक्ता देकर उसको सोनेकी ज़ंजीरसे क्यो न सजा दे, परन्तु जो दास है, वह तो सदा दास ही रहेगा!

द्वार०––महारानीजी! आपका कथन सत्य है, किन्तु पति फिर भी पति है, उनका अपमान करनेसे क्या लाभ? क्षमा कीजिये, मैं आपको कुछ सीख नही दे रहा हूँ, परन्तु फिर भी पुराना सेवक होनेका अभिमान रखते हुए, मैं यह प्रार्थना करता हूँ, कि आप इस समय तो उन्हें अन्तःपुरमें बुलाकर सान्त्वना दें, पश्चात् क्षत्रियोचित कर्त्तव्यका ज्ञान करानेके लिए कुछ उतार-चढ़ावकी बातें भी करें! इसके विपरीत करनेसे जग हँसाई होगी और प्रजा भी उद्दण्ड हो जायगी।

द्वारपालके समय-विरुद्ध व्याख्यानको सुनकर शिशोदिया-कुलोत्पन्न वीरांगना झल्ला उठी, किन्तु द्वारपालकी स्वामि-भक्तिने क्रोधके पारेको आगे न बढ़ने दिया, वह सहम कर बोली––

"तुझसे अधिक मेरे हृदयमें उनका मान है। वह मेरे ईश्वर हैं, मेरे देवता हैं, मैं उनकी पुजारिन हूँ। परन्तु मालूम होता है वृद्धावस्थामें तेरी बुद्धिपर पाला पड़ गया है, वीरताको जंग लग गया है, नही तो ऐसी बातें नहीं करता। क्या तू नहीं जानता कि मारवाड़ वीर-प्रसवा भूमि है? यहाँके निवासी युद्धसे भागना नहीं जानते, वह जानते हैं युद्धमें कटकर मरना। महाराजको देखनेपर जब उन्हें मालूम होगा कि यहाँ युद्धसे भागे हुए कायरको भी शरण मिल सकती है, उसका भी आदर होता

है, तब वह भी यह कुटेव सीख जाएँगे। अतएव मै नहीं चाहती कि मेरे देशवासी कायर बनें।"

वृद्ध द्वारपाल अवाक् रह गया ! वह किंकर्त्तव्यविमूढ़की नाई पृथ्वी कुरेदने लगा।

× × ×

शिशोदिया राजकुमारीकी सास भी छुपी हुई यह सब कुछ सुन रही थी। पुत्रवधूके वीरोचित शब्दोंसे यशवन्तकी जननीका रक्त खौल उठा। यह वास्तवमें उसका अपमान था। वह दुःखमें अधीर हो उठी। पुत्रको पुनः रणक्षेत्रमें कैसे भेजूँ—वह यही सोचने लगी। अन्तमें उसने क्रोधको दबाकर गर्म लोहेको ठण्डे लोहेसे काटा। यशवन्तसिहको बुलाकर सदाकी भाँति प्यार करके भोजन जिमाने लगी ! सुवर्णके बजाय लोहेके बर्त्तन देखकर यशवन्तसिह क्रुद्ध हो गये। राज-माता भी दासियोंपर कृत्रिम क्रोध कर बोली—"देखती नही हो, मेरा बेटा तो पूर्व ही लोहेसे डरकर यहाँ भाग आया है, फिर लोहा ही उसके सामने ला रक्खा !" माताके इस व्यंगसे यशवन्तसिह कट-से गये। राजमाता अपने उपदेशका अंकुर जमने योग्य भूमि देखकर बोली—

"यशवन्त ! वास्तवमें तू मेरा पुत्र नहीं। तुझे बेटा कहते हुए मै मारे आत्म-ग्लानिके गड़ी जा रही हूँ। यदि तू मेरा पुत्र होता तो शत्रु-को पराजित किये बिना न आता। तुझमें मान नही, साहस नहीं, अभि-मान नही, तू कुलकलंकी है, कायर है, शिखण्डी है, तूने राजपूत कुलमें जन्म लेकर, इसके उज्ज्वल मुखमें कलंक लगा दिया। बहूका आत्माभि-मान देखकर मेरी छाती गर्वसे फूल उठी है, किन्तु साथ ही दारुण अपमानके मारे मैं मरी जा रही हूँ। एक तो वह वीर-प्रसवा क्षत्राणी, जिसने ऐसी वीर-बालाको जन्म दिया, और एक मैं जिसने तेरे जैसे कुलांगारको उत्पन्न किया ! धिक्कार है मेरे पुत्र प्रसव करनेको ! अच्छा होता जो वन्ध्या होती अथवा तेरी जगह ईंट-पत्थर प्रसव करती जो मकानोंके तो काम

आते। अस्तु, जो होना था सो हो चुका। किन्तु ठहर, मै तेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती हूॅ। बहू कायरपत्नी नही कहलाना चाहती, तो मै भी कायर पुत्रको जीवित रखना नही चाहती।"

क्रोधके आवेशमें वीर-माता कटार निकालकर मारना ही चाहती थी, कि यशवन्तसिह रोकर पैरोंपर गिर पड़े। फिर तलवार निकालकर प्रतिज्ञा की–"माता ! जब तक मै जीवित रहूॅगा, युद्धमें रहूँगा, युद्धसे कभी विमुख नही होऊॅगा। जबतक शत्रुओंका नाश नही कर लूंगा कभी सुखसे न बैठूंगा।"

सेवकका कर्त्तव्य

मेवाड़-केसरी महाराणा प्रताप मौतके शिकंजेमें जकड़े हुए थे। वह लोहेके कटघरेमें फँसे हुए शेरकी भाँति रोग-शय्यापर पड़े छटपटा रहे थे। अस्फुट वेदनाके चिह्न उनके मुखसे भली भाँति प्रकट हो रहे थे। आँखोंके कोनेमें छुपे हुए आँसू मौन-वेदनाका सन्देश दे रहे थे। वीर-चूड़ामणि महाराणा प्रतापने पूर्वजोंकी बनाई हुई गगनचुम्बी अट्टालिकाओंको छोड़कर पीछोला सरोवरके किनारेपर कई एक झोपड़ियाँ बनवाई थी। उन्ही कुटियोंमें अपने समस्त सरदारोंके साथ राणाजी अपना राजर्षि-जीवन व्यतीत करते थे। आज अन्तकालके समय भी उन्हींमेंसे एक साधारण कुटीमें रुग्ण-शय्यापर लेटे हुए क्रूरकालकी बाट जोह रहे थे। इतनेमें ही प्रचण्ड वेगसे शरीरको कम्पायमान करती हुई एक साँस राणाजीके मुँहसे निकली। समीपमें बैठे हुए उनके जीवनके सखा, मेवाड़के सामन्त और सरदार, उनकी इस मर्मान्तिक वेदनाको देखकर काँप उठे। शालुम्ब्रा-सरदार कातर होकर रुँधे हुए स्वरमें बोले—"अन्नदाता! इस अन्तिम समयमें आपको ऐसी क्या चिन्ता है? किस दारुण दुखके कारण आप छटपटा रहे है? आपका यह दीर्घ निःश्वास हमारे हृदयमें तीरकी तरह लगा है। यदि कोई अभिलाषा है, तो कृपा करके कहिये, हम सब आपकी इस अंतिम इच्छाको जीवनके अन्त समय तक अवश्य पूर्ण करेंगे।"

मेवाड़का वह टिमटिमाता हुआ दीपक शालुम्ब्रा सरदारके आश्वासन-रूपी तेलको पाकर फिर प्रज्वलित हो उठा। महाराणा प्रताप अपने शरीरकी पूर्ण शक्ति लगाकर बड़े कष्टसे बोले—"प्यारे सखा! पूछते हो मुझसे, क्या कष्ट है? मेरे भोले सरदार! इतने भोलेपनका प्रश्न! मेरी मातृ-भूमि चित्तौड़ जो मेरे पूर्वजोंकी क्रीड़ास्थली थी, जिसके लिये मुस्कराते हुए उन्होंने अपने प्राणोंकी आहुतियाँ दीं, उसे मैं यवनोंके चंगुलसे नहीं छुड़ा सका, मैं अपने प्यारे देशवासियोंको चित्तौड़की पवित्र-

भूमिपर स्वतंत्र विचरते हुए न देख सका; यह क्या कम कष्ट है ! यही दारुण वेदना मेरे प्राणोंको रोके हुए है ।"

शालुम्ब्रा-सरदार मस्तक झुकाकर बोले—"श्रीमन् ! आपकी यह पवित्र अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी । आप किसी प्रकारकी चिन्ता न करके एकाग्रचित्तसे भगवान्का स्मरण करिये. . ."

शालुम्ब्रा-सरदारके वाक्य पूर्ण होनेतक महाराणा प्रतापका विषादपूर्ण पीला मुँह गम्भीर हो गया, वह बीचमें ही बात काटकर बोले—

"ओह ! शालुम्ब्रा-सरदार, मुझे वाक्य-पटुतामें न फँसाओ । मुझे इस समय धर्मोपदेशकी आवश्यकता नही । देश परतंत्र रहे, और मैं इस अन्त समयमें भगवान्का स्मरण करके परलोक सुधारूँ ? छिः ! कैसी वाक्य-विडम्बना है ? मेरे मित्र ! याद रक्खो, जो इस लोकमें परतंत्र है, वह परलोकमें भी परतंत्र रहेंगे । जो व्यक्ति अपने देशवासियों-को दुख-सागरमें बिलखते देखकर अकेला मोक्ष पाना चाहता है, वह न तो मोक्ष पाता है, न पानेके योग्य है । त्रिशंकुकी तरह उसको बीचमें ही लटकना पड़ता है । यदि मेरे नरकमें रहनेसे भी मेरा देश स्वतंत्र हो सकता है, तो मै नरककी दुस्सह वेदना सहन करनेको प्रस्तुत हूँ । बोलो, बोलो, क्या कहते हो ? शपथ करो कि इन विदेशियोंका विध्वंस करके मातृ-भूमिको स्वतंत्र कर देंगे ।"

सामन्त और सरदार व्यग्र हो उठे, राणाजीकी यह अभिलाषा क्योंकर पूर्ण होगी ? जीवन भर लड़ते हुए भी जिसे अपना न कर सके, उसे अब कैसे स्वतंत्र कर सकेंगे ? तब भी सन्तोषके लिए आश्वासन देते हुए बोले—"भारत-सम्राट् ! आपकी यह अभिलाषा वीरोचित है । आप विश्वास रखिये, श्री बापजीराव (युवराज अमरसिंह) आपकी इस अंतिम कामनाको श्री एकलिंगजीकी कृपासे अवश्य पूर्ण करेंगे ।"

वीर-शिरोमणि महाराणा प्रताप चुटीले साँपकी तरह फुफकार कर बोले—"अमर चित्तौड़को तो क्या स्वतंत्र करेगा, वह रहे-सहे मेवाड़के

गौरवको भी खो बैठेगा। उसके आगे मेवाड़की पवित्र भूमि म्लेच्छोंके पाद-प्रहारसे कुचली जायगी।"

समस्त सरदार एक स्वरसे बोल उठे—"अन्नदाता! ऐसा कभी न होगा।"

दीप निर्वाण होनेके पूर्व एक बार प्रज्वलित हो उठता है। उसी प्रकार राणाजी शक्ति न रखते हुए भी आवेशमें कहने लगे—"मैं कहता हूँ, ऐसा अवश्य होगा। युवराज अमरसिंह हमारे पितृ पुरुषोंके गौरवकी रक्षा नहीं कर सकेगा। वह यवनोसे युद्ध न करके मेवाड़की कीर्त्ति-रूपी स्वच्छ चादरपर विलासिताका स्याह धब्बा लगा देगा..."

कहते-कहते उनका गला रुँध गया। सरदारके दो घूँट पानी पिलानेके पश्चात् वह क्षीण स्वरसे बोले—"एक समय कुमार अमरसिंह उस नीची कुटीमें प्रवेश करनेके समय सिरकी पगड़ी उतारना भूल गया था। इस कारण सिरकी पगड़ी द्वारके निकले हुए बाँसमें लगकर नीचे गिर पड़ी। अमरसिंहने इस कुटीके महत्वको कुछ भी न समझा और दूसरे दिन मुझसे कहा कि यहाँ पर बड़े-बड़े महल बनवा दीजिये!"

युवराज अमरसिंहके बाल्यकालकी गाथा कहते हुए राणाजीका पीतमुख और भी गम्भीर हो गया उन्होंने फिर एक लम्बी साँस ली और बोले—"इन कुटियोंके बदले यहाँ रमणीय महल बनेंगे। मेवाड़की दुर-वस्था भूलकर अमर यहाँपर अनेक प्रकारके भोग-विलास करेगा। उससे इस कठोर व्रतका पालन नहीं होगा। हा! अमरसिंहके विलासी होनेपर वह गौरव और मातृभूमिकी वह स्वाधीनता भी जाती रहेगी जिसके लिये मैंने बराबर २५ वर्ष तक बनमें और पर्वत-पर्वतपर घूमकर बनवासका कठोर व्रत धारण किया। जिसको अचल रखनेके लिये सब भाँतिकी सुख-सम्पत्तिको छोड़ा। शोक है कि अमरसिंहसे इस गौरवकी रक्षा न होगी। वह अपने सुखके लिये उस स्वाधीनताके गौरवको छोड़ देगा और तुम लोग, उसके अनर्थकारी

उदाहरणका अनुसरण करके मेवाड़की पवित्र और धवल कीर्त्तिमें कलंक लगा दोगे।"

महाराणाका वाक्य पूरा होते ही समस्त सरदार मिलकर बोले—"क्षमा, अन्नदाता! महाराज! हम लोग वप्पारावलके पवित्र सिहासनकी शपथ खाकर कहते हैं कि जब तक हममेंसे एक भी जीवित रहेगा, उस दिनतक कोई तुरक मेवाड़की भूमिपर अधिकार नही पा सकता जब तक मेवाड़-भूमिकी स्वाधीनता पूर्ण भावसे प्राप्त न कर लेंगे, तबतक इन्ही कुटियोंमें हम लोग रहेंगे।"

सरदारोंकी वीरोचित शपथ सुनकर [illegible] वीर-चूड़ामणि राणा प्रतापके नयन झरोखोंसे आनंदाश्रु झलकने लगे। वह नेत्र विस्फारित करके मुस्कराते हुए "भारत माताकी जय", "मेवाड़ भूमिकी जय" इतना ही कह पाये थे, कि उनकी आत्मा स्वर्गासीन हो गई। मेवाड़वासी दहाड़ मारकर रोने लगे, मेवाड़ अनाथ हो गया।

× × ×

वीर-केसरी प्रतापके स्वर्गासीन होनेपर युवराज अमरसिहको राघववंशीय सूर्यकुल-भूषण वप्पारावलके पवित्र सिहासनपर बैठनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। महाराणा अमरसिहमें असाधारण गुण थे। उन्होंने अपने शासन-कालमें मेवाड़में कई आदर्श सुधार किये। किन्तु, स्वेच्छाचारिता और विलासिता दो ऐसे अवगुण है, जो मनुष्यके अन्य उत्तम गुणोंपर भी पर्दा डाल देते है। दुर्भाग्यसे राणा अमरसिह भी प्लेग, हैज़ेके समान उड़कर लगनेवाली विलासितारूपी बीमारीसे न बच सके। वे दिन-रात आमोद-प्रमोदमें रहने लगे। उनके पूर्वज क्या थे, इस समय मातृ-भूमि कैसे संकटमें है, भारतीय आर्य-ललनाओंकी कैसी दुरवस्था है, इस बातकी न तो उन्हें कुछ ख़बर ही थी, और न कुछ चिन्ता। वे दिन-रात महलोंमें पड़े हुए चापलूसोंके साथ अनेक क्रीड़ाएँ किया करते। जो झूठ बोलनेमें, बात बनानेमें, मायाचारी करनेमें, जितना सिद्धहस्त होता, वह उतना ही

प्रेम-पात्र बन सकता था। सच्चे देश-भक्त, वीर, और आनपर मर मिटने-वाले उनके यहाँ घमण्डी और पागल समझे जाने लगे। संसारमें क्या हो रहा है, इसकी उनको तनिक भी पर्वाह नहीं थी। ऐसे ही दुर्दिनोंमें उचित अवसर जान जहाँगीरने मेवाड़पर आक्रमण कर दिया। मातृ-भूमिपर संकट आया देख, कुछ वीर-सैनिकोंका हृदय धक-धक करने लगा। उनके नेत्रोंके सामने भविष्यमें आनेवाले संकट चल-चित्रके समान मूर्त्ति बनकर नाचने लगे। ऐसे संकटके समय भी राणाजी विलासितामें डूबे हुए, अपने चापलूस मित्रोंके साथ आमोद-प्रमोदमें मस्त हैं, मेवाड़-रक्षक आज भी कायरोंकी भाँति जनानेमें घुसे हुए हैं। इन्हीं बातोंको देखकर वह मुट्ठीभर राजपूत विकल हो उठे। उनकी हृदय-तन्त्री कर्तव्य-पालन करनेके लिये बार-बार प्रेरित करने लगी। शालुम्ब्रा सरदार वीर चुण्डावत को राणा प्रतापकी कही हुई बात इस समय बिलकुल ठीक जँचने लगी। इसी समय उन्हें अकस्मात् प्रतापके सामने की हुई प्रतिज्ञा याद हो आई। वह मेवाड़के वीर सैनिकोंकी एक टोली बनाकर राणाजीके महलोंमें जा पहुँचे। चुण्डावत सरदारकी उग्र मूर्त्ति देखकर राणाजी सहम गये, तब भी वे हँसकर बोले—"कहिये शालुम्ब्रा सरदार! इस समय कैसे पधारे?" राणा अमरसिंहके इस व्यंग भरे प्रश्नसे चुण्डावत सरदार कुछ कट-से गये, वह कड़ककर बोले—

"देशपर आपत्तिकी घनघोर घटा छाई हुई है, यवनेश अपनी असंख्य सेना लेकर मेवाड़पर चढ़ आया है; फिर भी आप पूछते हैं कि इस समय कैसे पधारे? विजेताओंके अत्याचारसे लाखों युवतियाँ विधवा हो जायँगी, उनका बलपूर्वक शील नष्ट किया जायगा। हमारे धार्मिक मन्दिर पृथ्वीमें समतल कर दिये जाएँगे। मेवाड़की कीर्त्ति लुप्त हो जायगी। सब कुछ जानते हुए भी मेवाड़-नरेश! यह अनभिज्ञता कैसी?"

चुण्डावत-सरदारके ये मर्मान्तक वाक्य राणाजीके हृदयमें लगे तो, किन्तु व्यर्थ! उनकी काम-वासनाने, विद्वत्ता, वीरता, स्वाभिमान, मनुष्यता,

सभीपर पर्दा डाल रक्खा था। वे सरदारको टालनेकी ग़रज़से बोले—
"तब मै क्या करूँ ?"

"आप क्या करे ! राणा संग्रामसिहने क्या किया था ? राणा लक्ष्मण सिहके बारह पुत्रोने क्या किया था ? वीर जयमल और पत्तेने क्या किया था ? और आपके यशस्वी पिताने क्या किया था ? जो उन्होंने किया, वही आप कीजिये। जिस पथका अवलम्बन उन्होंने किया, उसीका अनुसरण आप भी कीजिये।"

"मै व्यर्थका रक्त-पात करके अपने हाथोंको कलंकित नहीं करना चाहता।"

"अच्छा, आप रक्त-पात न कीजिये, परन्तु अपना ही रक्त बहाइये।"

"इसका तात्पर्य ?"

"यही कि आपकी विलासिता और अकर्मण्यतासे जो मेवाड़वासी अनुत्साही हो गये है—उनके हृदयकी वीरता शुष्क हो गई है—वह आपके रक्त-सचारसे फिर हरे भरे हो जायगी !"

"तो क्या मै मर जाऊँ ?"

"हाँ, जो युद्ध नही करना चाहता—अहिंसक है—वह मातृभूमिके ऋणसे उऋण होनेके लिये स्वयं उसकी वेदीपर वलि हो जाय।"

"कोई आवश्यकता नही, चुण्डावत सरदार ! इस समय तुम यहाँसे चले जाओ।"

"मैं नही जा सकता"—इतना कहकर क्रोधमें भरे हुए चुण्डावत सरदार-ने सामने लगे हुए बिल्लोरी आइनेको पत्थर मारकर तोड़ डाला और सैनिकोंको आज्ञा दी कि कर्त्तव्य-विमुख राणाजीको घोड़ेपर बिठाओ ! आज हम फिर एकबार लोहा बजाकर अपनी मातृ-भूमिका मुख उज्ज्वल करेंगे ! राणा प्रतापके समक्ष की हुई प्रतिज्ञा आज सार्थक करेंगे।

सैनिकोंने राणाजीको बलपूर्वक घोड़ेपर बिठा दिया। राणाजी क्रोध-के आवेशमें चुण्डावत सरदारको राजद्रोही, विश्वासघाती, उद्दण्ड आदि

अनेक उपाधियाँ वितरण करने लगे। सैनिकों और सरदारोंका इस ओर ध्यान ही नही था। वे सब बड़े चावसे झूमते हुए राणाजीको घेरे हुए रण-क्षेत्रकी ओर चल दिये। मार्गमें चलते हुए राणाजीकी मोह-निद्रा दूर हुई। उन्हें चुण्डावत सरदारका यह कार्य उचित जान पड़ा। उन्हें अपनी अकर्मण्यतापर पश्चात्ताप होने लगा। वे सरदारको सम्बोधन करके बोले--"शालुम्ब्रा सरदार ! वास्तवमें आज तुमने वह वीरोचित कार्य किया है, जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। तुमने मुझे विलासिताके अंधेरे कूपसे निकालकर मेवाड़का मुख उज्ज्वल किया है। इसके लिये मेवाड़ तुम्हारा कृतज्ञ रहेगा। अब तुम देखोगे, प्रतापका पुत्र, बप्पारावलका वंशधर कहलाने योग्य है अथवा नही ? आज रण-क्षेत्रमें इसकी परीक्षा होगी।"

शालुम्ब्रा सरदार हाथ जोड़कर बोले--"राणाजी ! यदि कुछ अपराध हुआ है तो क्षमा कीजिये। स्वामीको कुपथसे निकालकर सुमार्ग पर लाना सेवकका कर्त्तव्य है; मैंने कोई नया कार्य नही किया, केवल सेवकने अपना कर्त्तव्य-पालन किया है।"

× × ×

राणा अमरसिंह अपने वीर सैनिकोंको लेकर जहाँगीरकी सेनापर बाजकी तरह झपट पड़े और अपने अतुल पराक्रमद्वारा जहाँगीरका मान मर्दन कर दिया। थोड़े दिनों बाद अमरसिंहने चित्तौड़गढ़को मुग़ल बादशाहकी पराधीनतासे मुक्त कर लिया। इस प्रकार राणा प्रतापकी अंतिम अभिलाषा पूर्ण हुई।

वीर नारी

युवतीने क्रोधके वेगको रोककर कहा--"कविजी ! कविता फिर भी रची जायगी, इस समय अपनी बहनकी इज्ज़त बचाओ ।"

यह कवि बीकानेर महाराज रायसिंहके भाई थे । जब बीकानेर-नरेशने अपनी लड़की अकबरको दी, तो इन्होंने उनका तीव्र प्रतिवाद किया और वे लड़नेके लिए तैयार हो गये । इसपर वे आगरेमें नज़र क़ैद कर लिये गये । इन्हें कविता करनेका व्यसन था । अकबर बादशाह इनकी कविता चावसे सुनता था । हर समय इन्हें यही एक धुन रहती थी । इनका नाम पृथ्वीराज था । अन्यमनस्क भावसे बोले-"क्यों, क्या हुआ ? प्राणप्रिये ! इस समय मुझे क्षमा करो, मुझे एक समस्या-पूर्ति करनी है, इसलिये..."

युवती--(बात काटकर) तो साफ क्यों नहीं कहते, कि इस समय चली जा, नहीं तो कविता अच्छी न बन सकेगी ।

पृथ्वी--अच्छा, यही समझ लो ।

युवती--मैं ख़ूब समझ चुकी हूँ । यदि यही अकर्मण्यता न होती, तो आपको इस प्रकार दासत्व-वृत्ति स्वीकार नहीं करनी पड़ती । देशके ऊपर आपत्तिकी घनघोर घटा छाई हुई है, सगी बहनका सतीत्व नष्ट हो रहा है, और आप कविता करने बैठे हैं । धिक्कार है आपकी कविताको, फिटकार है आपकी बुद्धिको, लानत है आपकी सूझ को !

पृथ्वी--तो क्या कविता करना छोड़ दूँ ?

युवती--अवश्य !

पृथ्वी--ध्यान रहे, संसारमें सब वस्तु मिट सकती हैं, परन्तु कृति नहीं मिटती !

युवती--मैं सौगन्धपूर्वक कहती हूँ कि संसारमें सब कुछ मिट सकता है, परन्तु कुलमें लगा हुआ कलंक कभी नहीं मिटता ।

पृथ्वी—कवितासे सैनिकोंके हृदयमें वीर-भाव उत्पन्न होते हैं। चन्दबरदाईका नाम उसकी कविताके कारण अमर हो गया है।

युवती—हाँ, यदि कवितामें हृदयके भाव हों, और स्वयं कवि भी अपने कथनानुसार कर्मवीर हो तब न? जब लोगोंको यह मालूम होगा कि यह कृति उस अकर्मण्यकी है, जो परतंत्रताके बन्धनमें जकड़ा हुआ था, जो अपनी बहनका सर्वनाश आँखोंसे देखता रहा, तब वह आपकी कृतिका उपहास करेंगे। चन्दबरदाईका नाम कविताके कारण नहीं, उसकी वीरताके कारण अमर है।

पृथ्वी—साहित्य और संगीतसे रहित मनुष्य पशु है।

युवती—लेकिन यदि किसी घरमें आग लगी हो, तो उसके निवासियोंको गाते-बजाते देखकर तुम क्या कहोगे?

पृथ्वी—मूर्ख कहूँगा, और क्या?

युवती—क्यों? गाना तो कोई बुरी चीज़ नहीं।

पृथ्वी—बुरी चीज़ नहीं, किन्तु उस समय उसकी आवश्यकता नहीं। समयपर ही सब कार्य अच्छे लगते हैं।

युवती—बस, आपके कथनानुसार फैसला हो गया। कविता करना बुरा नहीं, किन्तु इस समय उसकी आवश्यकता नहीं।

पृथ्वी—इसका तात्पर्य?

युवती—यही कि आप क्षत्रिय हैं। भारतमाताको इस समय वीर-पुत्रोंकी आवश्यकता है। आप ही सोच लें, यदि आज वीर राजपूत समस्यापूर्त्तिमें लगे रहें, तो फिर देशकी समस्याको कौन हल करेगा?

पृथ्वी—तो तुम क्या चाहती हो?

युवती—यही कि देशसेवाके व्रतमें केशरिया बाना पहनकर शत्रुओंका संहार करो। आज इनके अत्याचारोंसे भारत माता रुदन कर रही है, स्त्री-बच्चोंकी गर्दनोंपर निर्दयतापूर्वक छुरी चलाई जा रही है, वीर ललनाओंका बलपूर्वक शील नष्ट किया जा रहा है। अतएव इस समय

कविता करना योग्य नहीं। प्रतापका साथ दो, प्राणनाथ! प्रताप-जैसे बनो!

कहते-कहते युवतीका गला रुँध गया। वह अब अपनेको अधिक न सम्भाल सकी। लज्जा, घृणा, मानसिक सन्ताप आदिने उसे बोलनेमें असमर्थ कर दिया। वह अपने पतिके पाँवोंमें पड़कर फूट-फूटकर रोने लगी। युवतीके रुदनमें कुछ बेबसीका ऐसा अंश था कि पृथ्वीराजका कठोर हृदय भी पिघल गया और वह उत्सुकतासे उसके दुःखका कारण पूछने लगे।

× × ×

जिस समय यवन बादशाह अकबरके हाथोंमें भारतवर्षके शासनकी बागडोर थी, उस समय वीर-चूड़ामणि प्रतापको छोड़कर सभी राजे अपनी स्वाधीनता खोकर, पूर्वजोंकी मान-मर्यादाको तिलांजलि देकर दासत्व-वृत्ति स्वीकार कर चुके थे। जोधपुरका राजा उदयसिंह अपनी बहन जोधाबाईका और आमेरका राजा मानसिंह अपनी बहनका सम्बन्ध बादशाहसे करके राजपूत-जैसे उज्ज्वल कुलमें कलंक लगा चुके थे। महाराणा प्रतापके छोटे भाई शक्तसिंह भी घरेलू झगड़ोंके कारण अकबरसे जा मिले थे। इन्हीं शिशोदिया-वीर शक्तसिंहकी कन्या बीकानेरके राजकुमार पृथ्वीसिंहको ब्याही थी। शक्तसिंह यद्यपि इस समय "घरका भेदी लंका ढावे" इस कहावतके निशाने बन रहे थे, किन्तु उनकी कन्याके हृदयमें मातृभूमिके प्रेमका अंकुर फूट निकला था। वह क्षत्राणी थी, उसे अपने कुलकी मान-मर्यादाका पूरा ध्यान था। उसके कुलकी असंख्य वीरांगनाएँ जीतेजी आगमें कूदकर मरी हैं, रण-क्षेत्रमें शत्रुओंका रक्त बहाकर राजपूती शान दिखा गई है, इत्यादि बातोंका उसे पूरा ज्ञान था। वह भी अपने पतिके साथ आगरेमें रहती थी। अकबर अपनी काम-वासनाएँ तृप्त करनेके लिये अनेक राक्षसी यत्न करता रहता था। अपनी विलासिताके लिये वह आगरेके क़िलेमें महीनेमें एक बार मीना बाज़ार लगवाता था। उसमें केवल स्त्रियोंके जानेकी आज्ञा थी। राजपूत और

मुसलमान व्यापारियोंकी स्त्रियाँ अनेक देशोंके शिल्पजात पदार्थ लाकर उस मेलेमें कारबार किया करती थी। और राज-परिवारोंकी स्त्रियाँ वहाॅं जाकर मनमानी सामग्री मोल लिया करती थी। पाखण्डी अकबर भी भेष बदले हुए वहाँ जाता था और किसी-न-किसी सुन्दर युवतीको अपने षड्यंत्रमें फाँस लिया करता था। एक समय पृथ्वीराजकी पत्नी किरन भी उक्त मीना बाज़ारकी सैर करने गई। अकबरने इसे धोखेसे भुलावा देकर महलोंमें बुला लिया। किरन अकबरके पैशाचिक भावको ताड़ गई, लपककर उखेड़में बैठ बादशाहको दे मारा और कमरसे एक छुरा निकाल बादशाहकी छातीपर बैठ सिंहनीकी तरह गरजकर बोली— "ईश्वरके नामसे शपथ करके कह कि और किसी अबलाके शील नष्ट करनेकी इच्छा नही करूँगा। कह, शपथ कर, नही तो यह तीक्ष्ण छुरी अभी तेरे हृदयके रुधिरसे स्नान करेगी।" कायर अकबर प्राणोंकी भिक्षा माँगने लगा, उसने तत्काल वीर बालाकी आज्ञाका पालन किया। वीर नारी किरन ने भी अकबरको जीवन दान दिया।

इसी घटनासे घायल सिंहनीकी तरह जब किरन अपने मकानपर आई, तब वहाँ पृथ्वीराजको कविता करते देख वीर बालाका क्रोधरूपी समुद्र उमड़ आया और उसी आवेशमें अपने पतिको उसके क्षत्रियोचित कर्तव्यका ज्ञान कराने के लिये झूठ-मूठ अपनी ननदका नाम ले दिया। शिशोदिया राज-कन्याओंने हमेशा धर्मके लिये जान दी है। उन्होंने कभी अपने उज्ज्वल कुलमें कलंक नही लगने दिया, यही कारण है कि उस समय जिसको शिशोदियांराज-कुमारी व्याही जाती थी, वह मारे गर्वके फूल उठता था, लोग उसके भाग्यकी सराहना करते थे। चित्तौड़ राजकुमारी पटरानी रहेगी, उसीकी सन्तानराज्य की उत्तराधिकारिणी होगी, इन शर्तोपर वे ब्याही जाती थीं। इसी वीरबाला किरनने महाराणा प्रतापका सन्धिपत्र जो अकबरके पास आया था, उसके उत्तरमें अपने पति पृथ्वीराजसे वीरोचित शब्दोंमें एक पत्र लिखवाया था, जिसे पढ़कर महाराणा प्रताप फिर अपने खोये हुए धैर्यको प्राप्त कर सके थे।

आशाशाहकी वीर माता

आशाशाहकी वीर-माताका नाम ऐतिहासिक विद्वानोंको ज्ञात नही। वह कीमती मोतीकी भाँति अन्तस्थलमें छुपा हुआ है, फिर भी उसकी प्रखर आभा संसारको बलात् अपनी ओर आर्कषित कर रही है। अपने जीवनमें उसने क्या-क्या लोकोपयोगी और वीरोचित कार्य किये, उसका निर्मल चरित्र और कोमल स्वभाव कितना बढ़ा चढ़ा था, वह सब कुछ अन्धकारमें विलीन हो गया है। तो भी उसके जीवनका केवल एक कार्य ही ऐसा है जो हमारी आँखें खोलता है और उसकी मनोवृत्तिपर काफ़ी प्रकाश डालता है। पूर्व युगमें सर्व साधारणके विषयमें कुछ लिखा जाय, ऐसी भारतमें प्रथा ही न थी। केवल राजे महाराजोके गीत गाये जाते थे। यही कारण है कि हम इस वीर माताके लोकोत्तर कार्योसे अनभिज्ञ हैं। हमें अपनी इस अज्ञानतापर तरस आता है।

इस देवीने [illegible] महाराणा प्रतापके पिता उदयसिंहकी—जब कि वह निरा बालक था—प्राण-रक्षा की थी। उस निराश्रयको अपने कुटुम्बका मोह छोड़कर आश्रय दिया था। यही कारण है कि राणा उदय-सिंहके सम्बन्धमें लिखते हुए टॉड् साहबको अपने राजस्थानमें प्रसंग वश इस देवीका उल्लेख भी दो लाइनमे करना पड़ा है।

चित्तौड़के राज्यासनपर बैठते ही दासी-पुत्र बनवीर[1]का हृदय बदल गया। उसे बे पिये ही दो बोतलका नशा रहने लगा। स्वार्थपरता कृतज्ञता

---

१ यह बनवीर दासी-पुत्र था और उदयसिंहका रिश्तेमें चाचा लगता था। राणा संग्रामसिंहके स्वर्गासीन होनेपर उसके पुत्र क्रमशः रत्नसिंह और विक्रमाजित मेवाड़के अधीश्वर हुए, किन्तु विक्रमाजित अयोग्य था इसलिये मेवाड़ हितैषी सरदारोंने विक्रमाजितको हटाकर बालक उदय-सिंहके बालिग़ होनेतक बनवीरको चित्तौड़के राज्यासनपर अभिषिक्त कर दिया था।

को धर दबाती है; लोभ दयाको स्थिर नही रहने देता। जो बनवीर विक्रमाजितको गद्दीसे उतारकर राज्य-प्राप्त करना घोर पाप समझता था, वही बनवीर राज्यासनपर बैठते ही सदा निष्कंटक राज्य करते रहनेकी कूट नीति सोचने लगा। वह राज्यके यथार्थ उत्तराधिकारी बालक उदयसिंहको अपने पथमें काटा समझकर उसे मिटा देनेके लिये क्रूर रात्रिकी बाट जोहने लगा। धीरे-धीरे रात्रि हो गई। कुमार उदयसिंहने भोजनादि करके शयन किया। उनकी धाई बिस्तरेपर बैठ सेवा करने लगी। कुछ विलम्बके पीछे रणवासमें घोर आर्तनाद और रोनेका शब्द सुनाई आने लगा। इस शब्दको सुनकर पन्ना धाय विस्मित हुई। वह डरसे उठना ही चाहती थी, कि इतनेमें ही बारी (नाई) राजकुमारकी जूठन आदि उठानेको वहाँ आया और भय विह्वल भावसे कहने लगा—"बहुत बुरा हुआ, सत्यानाश हो गया, बनवीरने राणा विक्रमाजितको मार डाला।" धाईका हृदय काँप गया, वह समझ गई कि निष्ठुर-हृदय बनवीर केवल विक्रमाजितको ही मारकर चुप न होगा, वरन् उदयसिंहके मारनेको भी आवेगा। उसने तत्काल बालक उदयसिंहको जिसकी अवस्था इस समय १५ वर्षकी थी, किसी युक्तिसे बाहर निकाल दिया और उसके पलंगपर उसी अवस्थाके अपने पुत्रको सुला दिया। इतनेमें ही रक्त-लोलुपी पिशाच-हृदय बनवीर आ पहुँचा और बालक उदयसिंहको खोजने लगा। तब पन्ना धायने इस रक्त-लोलुपको अपने पुत्रकी ओर संकेत कर दिया, उस चाण्डालने उसीको राजकुमार समझ उसके कोमल हृदयमें खंजर भोंक दिया। बालक सदैवको सो गया। पन्ना धायने अपने स्वामीके हितार्थ अपने बालकका बलिदान करके उफ़! तक न की। अपने पुत्रके मारे जानेपर पन्ना धाय महलोंसे निकलकर उदयसिंहके पास जा पहुँची। आगे टॉड् साहब लिखते हैं कि कुमारको साथ लेकर पन्ना धायने वीरवाघजीके पुत्र सिंहरावके पास जाकर रहनेकी प्रार्थना की, बनवीरके भयसे उसने राजकुमारकी रक्षा करना स्वीकार नहीं किया और अत्यन्त शोकयुक्त

होकर बोला—"मैं तो बहुतेरा चाहता हूँ कि राजकुमारकी रक्षा करूँ परन्तु वनवीर इस बातको जानकर वंश सहित मेरा संहार कर डालेगा। मुझमें इतनी सामर्थ्य नही कि उसका सामना करूँ।" इसके उपरान्त पन्ना देवलको छोड़कर डुगरपुर नामक स्थानमे गई और वहाँके रावल ऐशकर्ण (यशकर्ण) के पास राजकुमारको रखना चाहा, परन्तु उसने भी भयके मारे राजकुमारको नही रक्खा। तदुपरान्त विश्वासी और हितकारी भीलोंके द्वारा रक्षित हो आरावलीके दुर्गम पहाड़ और ईडरके कूट मार्गोको लाँघकर, कुमारको साथ लिये हुए पन्ना कुभलमेरु-दुर्गमे पहुँची। यहाँपर पन्नाकी बुद्धिमानीसे काम हो गया। देपुरा गोत्र-कुलमें उत्पन्न हुआ आशा-शाह देपुरा नामक एक जैन उस समय कुभलमेरुमें किलेदार था। पन्नाने उससे मिलना चाहा। आशाशाहने प्रार्थना स्वीकार करके विश्राम-गृहमें पन्नाको बुलाया। वहाँ पहुँचते ही धात्रीने बालक उदयसिहको आशा-शाहकी गोदमें बिठाकर कहा—'अपने राजाके प्राण बचाइए', परन्तु आशाशाहने अप्रसन्न और भीत होकर कुमारको गोदसे उतारना चाहा। आशाकी माता भी वहीपर थी। पुत्रकी ऐसी कायरता देखकर उसको फटकारते हुए उपदेशपूर्ण शब्दोंमे बोली[1]—

"आशा! क्या तू मेरा पुत्र नही है? क्या मैंने तुझे व्यर्थमें पालपोस-कर इतना बड़ा किया है? धिक्कार है तेरे जीवनको! क्या ही अच्छा होता जो तू मेरे उदरसे जन्म ही न लेता, तेरे भारसे पृथ्वी बोझो मरती है। जो मनुष्य विपत्तिमें किसीके काम नही आता, निरपराधियो और बेकसो-को अत्याचारियोंके चंगुलसे सामर्थ्य रहते हुए भी नही बचा सकता, निरा-श्रयोंको आश्रय नही दे सकता, ऐसे अधमको संसारमें जीनेका अधिकार नही। आ, जिन हाथोंसे लोरियाँ गा-गाकर तुझे इतना बड़ा किया, आज उन्हीं हाथोंसे तेरा जीवन समाप्त कर दूँ।"

---

१ टाड् राजस्थान द्वि० खं० अ० ६ पृ० २४५-४६।

इतना कहकर वह भूखी शेरनीकी भाँति आशाशाहपर झपट पड़ी और चाहती थी कि ऐसे नराधम, भीरु, कायर और अधर्मी पुत्रका गला घोट दे, कि आशाशाह अपनी वीर-माताके पाँवोमें गिर पड़ा। उसकी भीरुता हिरन हो गई। वह घुटने टेक अश्रुबिन्दुओसे अपनी वीर-माताके चरण-कमलोका अभिषेक करने लगा। वह मातृ-भक्त गद्-गद् कण्ठसे बोला—"माँ! तुम्हारा पुत्र होकर भी मै यह भीरुता कर सकता था? क्या सिहनी-पुत्र शृगालके भयसे अपने धर्मसे विमुख हो सकता है? क्या प्राणोके तुच्छ मोहमें पड़कर मैं शरणागतकी रक्षा न करके अपने धर्मसे विमुख हो सकता था? मेरी अच्छी अम्मा! क्या वास्तवमें तुम्हे यह भ्रम हो गया था?"

आशाशाहके वीरोचित शब्द सुनकर वीर-माताका हृदय उमड़ आया, वह उसके सिरपर प्यारसे हाथ फेरने लगी। आशाशाह माताका यह व्यवहार देखकर मुस्करा कर बोला— "माँ यह क्या? कहाँ तो तुम मेरा जीवन समाप्त कर देना चाहती थी और कहाँ......"

वीर-माता बात काटकर बोली—"बेटा, क्षत्राणिओंका अद्भुत स्वभाव होता है। वह कर्तव्य-विमुख पुत्र या पतिका मुँह देखना नही चाहती, किन्तु कर्तव्य-परायणकी वह बलाएँ लेती है, उनके लिए मिट जाती है।"

वीर आशाशाहने कुमार उदयसिहको अपना भतीजा कहके प्रसिद्ध किया और युवा होनेपर आशाशाहने उदयसिहको अन्य सामन्तोंकी सहायतासे चित्तौड़का सिंहासन दिला दिया। जबकि मेवाड़के बड़े-बड़े सामन्त, राज्यसे बड़ी-बड़ी जागीर पानेवाले चित्तौड़के यथार्थ उत्तराधिकारी कुमार उदयसिहको शरण न दे सके, तब एक जैन-कुलोत्पन्न महिलाने जो कार्य किया वह अवश्य ही सराहने योग्य है। आज भी इस सभ्यताके युगमें जब कि हर प्रकारकी शिकायतोंके लिए न्यायालय खुले हुए हैं, राजद्रोही-

को शरण देनेवाला दण्डनीय होता है, तब उस ज़मानेमें जब कि राजा ही सर्वे-सर्वा होता था, वह बिना किसी अदालतके अपनी इच्छानुसार मनुष्योंके प्राण-हरण कर सकता था, तब ऐसे संकटके समय भी उस महिलारत्नने जो कार्य कर दिखाया वह आदर्श है।

भामाशाह

स्वाधीनताकी लीलास्थली वीरप्रसवा मेवाड़भूमिके इतिहासमें राणा-प्रतापके साथ भामाशाहका नाम सदैव अमर रहेगा। इतिहासप्रसिद्ध हल्दीघाटीके युद्धमें वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लड़ा था[1]। २१ हजार राजपूतोंने असंख्य यवनसेनाके साथ युद्ध करके स्वतन्त्रताकी वेदीपर अपने प्राणोंकी आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाड़को यवनों द्वारा पददलित होनेसे न बचा सके। समस्त मेवाड़पर यवनोंका आतंक छा गया। युद्ध-परित्याग करनेपर राणा प्रताप मेवाड़का पुनरुद्धार करनेकी प्रबल आकांक्षाको लिये हुए वीरान जंगलोंमें भटकते फिरते थे। उनके ऐशो-आराममें पलने योग्य बच्चे, भोजनके लिये उनके चारों तरफ रोते रहते थे। उनके रहनेके लिये कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुगलोंके आक्रमणोंके कारण बना-बनाया भोजन कईबार राणाजीको छोड़ना पड़ा था। इतने पर भी आनपर मिटनेवाले समर-केसरी प्रताप विचलित नहीं हुए। वह अपने पुत्रों और सम्बन्धियोंको प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्रमें अपने साथ रहते हुए देखकर यही कहा करते थे कि राजपूतोंका जन्म ही इसलिये होता है। परन्तु उस पर्वत-जैसे स्थिर मनुष्यको भी आपत्तियोंके प्रलयंकारी

---

१ हल्दीघाटीका यह विख्यात युद्ध १८ जून सन् १५७६ ईस्वीको एक घड़ी दिन चढ़े आरम्भ हुआ था और उसी दिन सायंकालतक समाप्त हो गया था। (चांद, वर्ष ११, पूर्ण संख्या १२२, पृष्ठ ११८) और अब हर्ष है कि कुछ वर्षोंसे ज्येष्ठ शुक्ला ७ को इस स्वतन्त्रता बलिदान दिवस की पवित्र स्मृतिमें कुछ कर्मवीरोंने वहां मेलेका आयोजन करके किसी कविके निम्नलिखित उद्‌गारोंकी पूर्त्ति की है।

शहीदोंके मजारोंपर जुड़ेंगे हर बरस मेले।
वतनपर मरनेवालोंका यही बाक़ी निशां होगा॥

झोकोंने विचलित कर दिया। एक दफ़ा जंगली अन्नके आटेकी रोटियाँ बनाई गईं और प्रत्येकके भागमें एक-एक रोटी—आधी सुबह और आधी शाम के लिए—आई। राणाप्रताप राजनैतिक पेचीदा उलझनोंके सुलझानेमें व्यस्त थे, वे मातृभूमिकी परतंत्रतासे दुःखी होकर गर्म नि.श्वास छोड रहे थे कि इतनेमें लड़कीके हृदयभेदी चीत्कारने उन्हें चौका दिया। बात यह हुई कि जंगली बिल्ली छोटी लड़कीके हाथसे रोटीको छीनकर ले गई, जिससे वह मारे भूखके चिल्लाने लगी। ऐसी-ऐसी अनेक आपत्तियों मे घिरे हुए, शत्रुके प्रवाहको रोकनेमे असमर्थ होनेके कारण, वीर चूड़ामणि प्रताप मेवाड़ छोड़नेको जब उद्यत हुए तब भामाशाह राणाजीके स्वदेश-निर्वासनके विचारको सुनकर रो उठा।

हल्दीघाटीके युद्धके बाद भामाशाह कुम्भलमेरुकी प्रजाको लेकर मालवेमे रामपुरेकी ओर चला गया था। वहाँ भामाशाह और उसके भाई ताराचन्दने मालवेपर चढाई करके २५ लाख रुपये तथा २० हजार अशर्फियाँ दण्ड-स्वरूप वसूल की, इस सकटावस्थामे उस वीरने देशभक्तिसे तथा स्वामिभक्तिसे प्रेरित होकर, कर्नल जेम्सटॉडके कथनानुसार, राणा प्रतापको जो धन भेट किया था, वह इतना था कि २५ हजार सैनिकोंका १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। इस महान् उपकार करनेके कारण महात्मा भामाशाह मेवाड़के उद्धारकर्त्ता कहलाये गये[१]। भामाशाहके इस अपूर्व त्यागके सम्बन्धमे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजीने लिखा है—

जा धनके हित नारि तजै पति,
पूत तजै पितु शीलहिं खोई।
भाई सों भाई लरै रिपु से पुनि,
मित्रता मित्र तजै दुख जोई।

१—देखो टाड् राजस्थान जि० १ पृ० २४६।

> ता धन को बनिया ह्वै गिन्यो न,
> दियो दुख देश के आरत होई।
> स्वारथ अर्ध्य तुम्हारोई है,
> तुमरे सम और न या जग कोई ॥

देशभक्त भामाशाहका यह कैसा अपूर्व स्वार्थ-त्याग है? जिस धनके लिये कैकेयीने रामको १४ वर्षके लिये वनवास भेजा, जिस धनके लिये पाण्डव और कौरवोंने १८ अक्षौहिणी सेना कटवा डाली, जिस धनके लिये बनवीरने बालक उदयसिंहकी हत्या करनेकी असफल चेष्टा की, जिस धनके लिये मारवाड़के कई राजाओंने अपने पिता और भाइयोंका संहार किया, जिस धनके लिये लोगोंने मान बेचा, धर्म बेचा, कुल-गौरव बेचा, साथ ही देशकी स्वतंत्रता बेची, वही धन भामाशाहने देशोद्धारके लिये प्रतापको अर्पण कर दिया। भामाशाहका यह अनोखा त्याग धन-लोलुपी मनुष्योंकी बलात् आँखें खोलकर उन्हें देशभक्तिका पाठ पढाता है।

भारमलके[1] स्वर्गवास होनेपर राणा प्रतापने भामाशाहको अपना मंत्री नियत किया था। हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब भामाशाह मालवेकी ओर चला गया था तब उसकी अनुपस्थितिमें रामा सहाणी महाराणाके प्रधानका कार्य करने लगा था। भामाशाहके आनेपर रामासे प्रधानका कार्य-भार लेकर पुनः भामाशाहको सौंप दिया गया। उसी समय किसी कविका कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है—

भामो परधानो करे रामो कीधो रद्द[2]।

भामाशाहके दिये हुए रुपयोंका सहारा पाकर राणा प्रतापने फिर बिखरी हुई शक्तिको बटोरकर रण-भेरी बजा दी, जिसे सुनते ही शत्रुओं-के हृदय दहल गये, कायरोंके प्राण-पखेरू उड़ गये, अकबरके होश-हवास जाते रहे। राणाजी और वीर भामाशाह अस्त्र-शस्त्रसे सुसज्जित होकर

१—भामाशाहका पिता।

२—राजपूतानेका इतिहास ती० खं० पृ० ७४३।

जगह-जगह आक्रमण करते हुए यवनों द्वारा विजित मेवाड़को पुनः अपने अधिकारमें करने लगे। पं० झाबरमल्लजी शर्मा सम्पादक दैनिक हिन्दू संसारने लिखा है—"इन धावोंमें भी भामाशाहकी वीरताके हाथ देखने-का महाराणाको खूब अवसर मिला और उससे वे बड़े प्रसन्न हुए[1]।"

"...इसी प्रकार महाराणा अपने प्रबल पराक्रान्त वीरोंकी सहायता-से बराबर आक्रमण करते रहे और संवत् १६४३ तक उनका चित्तौड़ और माण्डलगढको छोड़कर समस्त मेवाड़पर फिरसे अधिकार हो गया। इस विजयमें महाराणाकी साहस प्रधान वीरताके साथ भामाशाहकी उदार सहायता और राजपूत सैनिकोंका आत्म-बलिदान ही मुख्य कारण था। आज भामाशाह नहीं है, किन्तु उसकी उदारताका बखान सर्वत्र बड़े गौरवके साथ किया जाता है।"

"प्रायः साढे तीनसौ वर्ष होनेको आये, भामाशाहके वंशज आज भी भामाशाहके नामपर सम्मान पा रहे हैं। मेवाड़-राजधानी उदयपुरमें भामाशाहके वशजको पंच-पंचायत और अन्य विशेष उपलक्षोंमें सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समयके उलट-फेर अथवा कालचक्रकी महिमासे भामाशाहके वंशज आज मेवाड़के दीवानपदपर नहीं हैं और न धनका बल ही उनके पास रह गया है। इसलिये धनकी पूजाके इस दुर्घट समयमें उनकी प्रधानता, धन-शक्ति सम्पन्न उनकी जाति-बिरादरीके अन्य लोगों-को अखरती है। किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाहके नामका गौरव ही ढाल बनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाहके वंशजोंकी परम्परागत प्रतिष्ठाकी रक्षाके लिये संवत् १६१२ में तत्सामयिक उदय-पुराधीश महाराणा सरूपसिंहको एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था, जिसकी नकल ज्यों-की-त्यों इस प्रकार है:—

१—श्री ओझाजीने भी लिखा है—महाराणा भामाशाहकी बड़ी खातिर करता था और वह दिवेरके शाही थानेपर हमला करनेके समय भी राजपूतोंके साथ था। राजपूतानेका इति० पृ० ७४३।

"श्री रामोजयति
श्रीगनेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादात्
भालेका निशान
(सही)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघजी आदेशात् कावड्या जेचन्द कुनणो वीरचन्दकस्य अप्रं थारा बड़ा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे साम ध्रमासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठेठसू य्या है म्हाजना की जातम्हे वावनी तथा चौका को जीमण वा सीगपूजा होवे जीम्हे पहेली तलक थारे होतो हो सो अगला नगर सेठ बेणीदास करसो कर्यो अर बेदर्याफत तलक थारे न्ही करबा दीदो अबारू थारी सालसी दीखी सो नगे वर सेठ पेमचन्दने हुकम की दो सो वी भी अरज करी अर न्यात म्हे हकसर मालम हुई सो अब तलक माफक दसतुरके थे थारो कराय्या जाजो आगासु थारा बंस को होवेगा जी के तलक हुवा जावेगा पंचाने वी हुकम करदीय्यो है सौ पेलीतलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १९१२ जेठसुद १५बुधे।"[1]

इसका अभिप्राय यह है—"भामाशाहके मुख्य वंशधरकी यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनोंमे समस्त जाति-समुदायका भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उसके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछेसे महाजनोंने उसके वंशवालोंके तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंहने उसके कुलकी अच्छी सेवाका स्मरण कर इस विषयकी जाँच कराई और आज्ञा दी कि महाजनोंकी जातिमें वावनी (सारी जातिका भोजन) तथा चौकेका भोजन व सिंहपूजामें पहलेके अनुसार तिलक भामाशाहके मुख्य वंशधरके ही किया जाय। इस विषयका परवाना वि० सं० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचंद कुनणा वीरचन्द कावड़ियाके नाम कर दिया, तबसे भामाशाहके मुख्य वंशधरके तिलक होने लगा।"

१ हिन्दू संसार दीपावली अंक कार्तिक कृ० ३० सं० १९८२ वि०।

"फिर महाजनोंने महाराणाकी उक्त आज्ञाका पालन न किया, जिससे महाराणा फतहसिंहके समय वि० सं० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकदमा होकर उसके तिलक किये जानेकी आज्ञा दी गई ।"[१]

वीर भामाशाह ! तुम धन्य हो !! आज प्रायः साढे तीनसौ वर्षसे तुम इस संसारमें नहीं हो परन्तु यहाँके बच्चे-बच्चेकी ज़बानपर तुम्हारे पवित्र नामकी छाप लगी हुई है[२] । जिस देशके लिये तुमने इतना

१ राजपूतानेका इ० पृ० ७८७-८८ ।

२ मेवाड़का अमूल्य और अप्राप्य ऐतिहासिक ग्रन्थरत्न 'वीरविनोद' में जिसको कि मुझे सौभाग्यसे मान्य ओझाजीके यहां देखनेका ज़रा-सा अवसर मिला गया था पृ० २५१ पर लिखा है कि--

"भामाशाह बड़ी जुरअतका आदमी था। यह महाराणा प्रतापसिंहके शुरू समयसे महाराणा अमरसिंहके राज्यके २॥-३ वर्ष तक प्रधान रहा। इसने ऊपर लिखी हुई बड़ी-बड़ी लड़ाइयोंमें हज़ारों आदमियोंका ख़र्च चलाया। यह नामी प्रधान संवत् १६५६ माघ शुक्ल ११ (हि० १००९। ता० ९ रजब ई० १६०० ता० २७ जनवरी)को ५१ वर्ष और ७ महीनेकी उमरमें परलोकको सिधारा। इसका जन्म संवत् १६०४ आषाढ़ शुक्ल १० (हि० ९५४ ता० ९ जमादियुल अव्वल ई० १५४७ ता० २८ जून) सोमवारको हुआ था। इसने मरनेके एक दिन पहले अपनी स्त्रीको एक बही अपने हाथकी लिखी हुई दी और कहा कि इसमें मेवाड़के खज़ानेका कुल हाल लिखा हुआ है। जिस वक़्त तकलीफ़ हो यह बही उन महाराणाकी नज़र करना। यह ख़ैरख़्वाह प्रधान इस बहीके लिखे कुल खज़ानेसे महाराणा अमरसिंहका कई वर्षों तक ख़र्च चलाता रहा। मरनेपर इसके बेटे जीवाशाहको महाराणा अमरसिंहने प्रधान पद दिया था। वह भी ख़ैरख़्वाह आदमी था। लेकिन भामाशाहकी सानीका होना कठिन था।"

बड़ा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है। परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुण गान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्त्तिसे स्वयं को ही नही किन्तु समस्त जैन-जातिका मस्तक ऊँचा कर दिया है। निःसन्देह वह दिन धन्य होगा, जिस दिन भारतवर्षकी स्वतंत्रताके लिये जैन-समाजके धन-कुबेरोमे भामाशाह-जैसे सद्भावोका उदय होगा।

× × × ×

जिस नररत्नका ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदिके सम्बन्धमे ऐतिहासिकोकी चिरकालसे यही धारणा रही है। किन्तु हालमें रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचंदजी ओझाने अपने राजपूतानेके इतिहास तीसरे खण्डमे 'महाराणा प्रतापकी सम्पत्ति' शीर्षकके नीचे महाराणाके निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाहके रुपये दे देनेपर फिर लड़ाईके लिये तैयारी करनेकी प्रसिद्ध घटनाको असत्य ठहराया है।

इस विषयमें आपकी युक्तिका सार 'त्यागभूमि' के शब्दोमें इस प्रकार है:—

"महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीरसे सन्धि होनेके बाद महाराणा अमरसिह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता? आगे आनेवाले महाराणा जगतसिह तथा राजसिह अनेक महादान किस तरह देते और राजसमुद्रादि अनेक वृहत्-व्ययसाध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इसलिये उस समय भामाशाहने अपनी तरफ़से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राजकोषों-से रुपया लाकर दिया।"

इसपर 'त्यागभूमि' के विद्वान् समालोचक श्रीहंसजीने लिखा है—

"निस्सन्देह इस युक्तिका उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़के राजा महाराणा प्रतापको भी अपने खजानोंका ज्ञान न हो, यह माननेको स्वभावत किसीका दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रतापकी शासन-कल्पना और साधारण नीतिमत्तासे इनकार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाहने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषोंकी ही सम्पत्ति दी होती, तो उसका और उसके वंशका इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझाजीने पृ० ७८८ पर किया है[1], हमें बहुत संभव नहीं दीखता। एक खजांचीका यह तो साधारण-सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पड़नेपर कोषसे रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्रसे उसके वंशधरोंकी यह प्रतिष्ठा (महाजनोंके जाति-भोजके अवसर-पर पहले उसको तिलक किया जाय) प्रारंभ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्ति-संगत मालूम नहीं होता[2]।"

इस आलोचनामें श्रद्धेय ओझाजीकी युक्तिके विरुद्ध जो कल्पना की गई है, वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय मैं इतना और भी कहना चाहता हूँ कि यदि श्री ओझाजीका यह लिखना ठीक भी मान लिया जाय कि महाराणा कुम्भा और सांगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रतापके समय तक सुरक्षित थी—वह खर्च नहीं हुई थी, तो वह सम्पत्ति चित्तौड़ या उदयपुरके कुछ गुप्त खजानोंमें ही सुरक्षित रही होगी। भले ही अकबरको उन खज़ानोंका पता न चल सका हो, परन्तु इन दोनों स्थानोंपर अकबरका अधिकार तो पूरा हो गया था; और ये स्थान अकबरकी फौजसे बराबर घिरे रहते थे, तब युद्धके समय इन गुप्त खज़ानों-से अतुल संपत्तिका बाहर निकाला जाना कैसे संभव हो सकता था?

---

१ सम्मानकी वह बात इसी लेखमें पृ० १६७–१६८ में उक्त इतिहाससे उद्धृत कर दी गई है।

२ त्यागभूमि, वर्ष ३, अंक ४, पृ० ४४५।

और इसलिये हल्दीघाटीके युद्धके बाद जब प्रतापके पास पैसा नही रहा, तब भामाशाहने देश-हितके लिए अपने पाससे--खुदके उपार्जन किये हुए द्रव्यसे--भारी सहायता देकर प्रतापका यह अर्थ-कष्ट दूर किया है; यही ठीक जॅचता है। रही अमरसिंह और जगतसिंह द्वारा होनेवाले खर्चो-की बात, वे सब तो चित्तौड़ तथा उदयपुरके पुनः हस्तगत करनेके बाद ही हुए है और उनका उक्त गुप्त खज़ानोकी सम्पत्तिसे होना संभव है, तब उनके आधारपर भामाशाहकी उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्यागपर कैसे आपत्ति की जा सकती है? अतः इस विषयमें ओझाजीका कथन कुछ अधिक युक्तियुक्त प्रतीत नही होता, और यही ठीक जॅचता है कि भामाशाहके इस अपूर्व-त्यागकी बदौलत ही उस समय मेवाड़का उद्धार हुआ था, और इसीलिये आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारक-के नामसे प्रसिद्ध है[१]।

१ यह अंश १ मार्च १९३० को लिखा गया जो कि १९३३ में मेरी राजपूतानेके जैनवीर नामक पुस्तकमें छपा था। इस पुस्तककी प्रस्तावना श्री ओझाजीने लिखी थी और मेरे आग्रह करनेपर भी इस अंशके विरुद्ध एक शब्द भी उन्होंने नहीं लिखा था।

—गोयलीय

हियेकी आँखोंसे

भाई-बहिन

इधर भाई दूल्हा बनकर ससुराल गया, उधर बहिन भरी जवानीमें विधवा हो गई। भाईके हाथका कँगना खुलने भी न पाया था कि बहिनकी चूड़ियाँ टूट गई। इधर नववधूकी माँग भरी जा रही थी, उधर बहिनके सुहागकी माँग आगई। भाईका गठबन्धन बाँधा जा रहा था, बहनका गठबन्धन प्रस्थान कर रहा था। भाई सुबकती हुई दुल्हनको बिदा कराके ला रहा था, बहिन डकराती हुई अपने दूल्हाको विदा कर रही थी। एक ही डालके दो फूल विधिके विधानसे पृथक्-पृथक् हास्य और शोकमें लीन थे।

कली कोई जहाँपर खिल रही थी।
वहीं एक फूल भी मुर्भा रहा था॥

—'जिगर'

इधर भाई दुल्हनको लेकर आया, उधर बहन निराश्रित होकर आश्रय खोजती चिरवैधव्य लिये आगई। भाईसे बहनकी ओर देखा न गया। वह हाय करके रह गया। उसकी युवकोचित अभिलाषाएँ सिमट कर रह गई।

एक रोज दबे पाँव अँधेरेमें दुल्हनके कमरेमें प्रवेश किया तो दुल्हन सकुचाकर रह गई। वह लाज और ग्लानिसे सिहर उठी। तो भी साहस बटोरकर बोली—

"बहिन आँखोंमें आँसू लिये फिरे, और आपकी आँखोमें काम छलके? तुम्हें सती-तेजकी सौगन्ध, मेरे हाथ न लगाना। आत्म-विस्मृत होनेके लिये आपको बाजार पड़ा है।"

उत्तरमें दुल्हनने नारी-कंठ सुना—"लाडो रानी! मैं हूँ अभागी! भाईने बरबस मुझे धकेल भेजा है। न आती तो आत्म-हत्यापर उतारू थे।"

दुल्हन प्यारकी बातोंसे बहिनका दुख भुलाने लगी। पर, बहिन भाई-भाभीके इस मौन संकल्पको समझनेका प्रयत्न करती रही। २५ वर्ष ननद-भावज एक साथ सोईं, बैठी, उठी, हँसी और रोईं। मगर भाईने दुल्हनका गोरा या काला मुँह भी न पहचाना। बहिन वैधव्यको याद करके एक दिन भी न रोई। ४५ वर्षकी आयुमें बहिन अपने सतयुगी भाई-भावजको छोड़कर स्वर्गासीन हुई।

तब दो वर्ष बाद भावजने एक पुत्र जना। जिसने युवा होकर शेरके आक्रमणपर उसकी पीठपर चढ़कर उसका गला दाबकर मार डाला। लोगोंने सुना तो बोले—"लव-कुश दोनों भाइयोंने कलियुगमें एक ही शरीरमें जन्म लिया है।" शायद यह युवक स्वयं अथवा इसकी सन्तान अम्बाले या हिसार जिलेके किसी गाँवमें अभीतक जीवित है।

इज्ज़त बड़ी, या रुपया ?

देहलीकी एक प्रसिद्ध सर्राफेकी दुकानपर ४०-५० हज़ार रुपयोंकी गिन्नियाँ गिनी जा रही थीं कि एक उचटकर इधर-उधर हो गई। काफ़ी तलाश करनेपर भी नही मिली। उस दूकानपर उनका कोई ग़रीब रिश्तेदार भी बैठा हुआ था। संयोगकी बात कि उसके पास भी एक गिन्नी थी। गिन्नी न मिलते देख, उसने मनमें सोचा कि शायद अब तलाशी ली जायगी। ग़रीब होनेके नाते मुझीपर शक जायगा। मेरे पास भी गिन्नी हो सकती है, यह किसीको यकीन नही आयगा। गिन्नी भी छीन लेंगे और बेइज्जत भी करेंगे। इससे तो बेहतर यही है कि गिन्नी देकर इज्जत बचा ली जाए।

ग़रीबने यही किया। जेबमेंसे गिन्नी चुपकेसे निकालकर ऐसी जगह डाल दी कि खोजनेवालोंको मिल गई। गिन्नी देकर वह खुशी-खुशी अपने घर चला गया। बात आई-गई हुई।

दीवालीपर दावात साफ की गई तो उसमेंसे एक गिन्नी निकली। गिन्नीको दावातमेंसे निकलते देख लाला साहब बड़े क्रुद्ध हुए--"रुपयोंकी तो बिसात ही क्या, यहाँ गिन्नियाँ इधर-उधर रूली फिरती है, फिर भी रोकड़बहीका जमा-ख़र्च ठीक मिलता रहता है। हद्द हो गई इस अन्धेरकी।"

रोकड़िया परेशान कि यह हुआ तो हुआ क्या ? इतनी सचाई और लगनसे हिसाब रखनेपर भी यह लांछन व्यर्थमें लग रहा है। सोचते-सोचते उसे उस रोज़की घटना याद आई। काफ़ी देर अक़्लसे कुश्ती लड़नेपर उसे ख़याल आया कि कही वह गिन्नी उचटकर दावातमें तो नहीं गिर गई थी। तब वह गिन्नी मिली कैसे ? शायद उस ग़रीबने अपने पाससे डालकर खुजवा दी हो। यह ख़याल आते ही वह स्वयं अपनी इस मूर्खतापर हँस पड़ा—"भला उसके पास गिन्नी कहाँसे आती ?

उसके बड़ोने भी कभी गिन्नियाँ देखी है जो वह देखता ? और शायद कही-से झाँप भी ली हो तो वह इतना बुद्धू कब है जो उसे हमें दे देता ?"

जब कल्पनाने साथ नही दिया तो यह उलझा हुआ विचार लाला साहबके सामने पेश किया गया। लाला साहब सब समझ गये। उनका रिश्तेदार गरीब तो ज़रूर है, पर विश्वस्त और बाइज्ज़त है, यह वह जानते थे। अतः लाला साहब उसके पास गये और वास्तविक घटना जाननी चाही तो काफ़ी टालमटोलके बाद उसने ठीक स्थिति समझा दी। लाला साहब गिन्नी वापिस करने लगे तो बोला--

"भैया साहब, मै अब इसे लेकर क्या करूँगा ? मेरी उस वक्त आबरू रह गई यही क्या कम है ? आबरूके लिये ऐसी हज़ारों गिन्नियाँ क़ुर्बान। मेरे भाग्यमें गिन्नी होती तो यह घटना ही क्यों घटती ? मुझे सन्तोष है कि मेरी बात रह गई। रुपया तो हाथका मैल है, फिर भी इकट्ठा हो सकता है, पर इज्जत-आबरू बह जानेपर फिर वापिस नही आती।"

उक्त घटना सुनकर हमारे एक परिचित महाशय बोले--"अजी साहब, एक इसी तरहकी घटना हम आपबीती आपको सुनाते है :--

"हमारे पिताजीके एक मित्र हमारे ज़िलेमें रहते है। वे जब किसी मुकदमे के सम्बन्धमें या सामान ख़रीदनेको शहर आते है तो हमारे यहाँ ही ठहरते है। एक रोज उनका पत्र आया कि जिस चारपाईपर मै सोया था, अगर वहाँ लाल रंगका मेरा अँगोछा मिले तो सम्भालकर रख लेना। अँगोछा तलाश किया गया, मगर नही मिला। वे जाड़ोंके बिस्तरोंमें सोये थे और वह जाड़े ख़तम होनेसे ऊपर टाँडपर रख दिये गये थे। सिर्फ़ एक अँगोछेके लिये घरभरके इतने बिस्तरे उठाकर देखनेकी ज़रूरत नही समझी गई। और अँगोछा नही मिलनेकी उन्हें सूचना भिजवा दी गई। बात आई-गई हुई। वे हमेशाकी तरह हमारे यहाँ आते-जाते रहे।

दिवालीपर मकानकी सफ़ाई हुई और जाड़ोंके बिस्तरे धूपमें डाले गये तो उनमेंसे लाल अँगोछा धमसे नीचे गिरा। खोलकर देखा तो दस

हज़ारके नोट निकले। हम सब हैरान कि यह इतने नोट कहाँसे आये, किसने यहाँ छिपाकर रखे। सोचते-सोचते ख़याल आया कि हो-न-हो यह रुपये उनके ही होंगे। इस अँगोछेमें रुपये थे, इसीलिये तो उन्होंने अँगोछा तलाश करके रखनेको लिखा था, सिर्फ अँगोछेके लिये वे क्यों लिखते? मै उनके पास रुपये लेकर गया और उलाहना देते हुए बोला—"चाचाजी! आप भी खूब हे, इतनी बड़ी रक़मका तो ज़िक्र भी नही किया, सिर्फ़ अँगोछा सम्भालकर रख लेनेको लिख दिया और हमारे मना लिख देनेपर भी आपने कभी इशारा तक नही किया। बताइये, कोई नौकर ले गया होता, टाँड़पर चूहे काट गये होते, तो हमारा तो हमेशाको काला मुँह बना रहता।"

चचा हँसकर बोले—"भाई, जितनी बात लिखनेकी थी, वह तो लिख ही दी थी। मेरा ख़याल था कि तुम समझ जाओगे कि कोई-न-कोई बात ज़रूर है। वर्ना दो आनेके पुराने अँगोछेके लिये दो पैसेका कार्ड कौन ख़राब करता? और रुपयोंका ज़िक्र जान-बूझकर इसलिये नही किया कि अगर कोई उठा ले गया होगा तो भी तुम अपने पाससे दे जाओगे। अपनी इस असावधानीके लिये तुम्हें परेशानीमे डालना मुझे इष्ट न था।"

पापी मन

मोण्टगुमरी जेलमें मेरा एक साधु-स्वभावी व्यक्तिसे परिचय हुआ। वमुश्किल पाँच फुटका क़द और चेहरा-मुहरा भी बस यों ही, देख कर हँसी आती थी। पर जब सुना कि ग्रेजुएट है, साहित्य, इतिहास, राजनीति और अन्तर्राष्ट्रिय [illegible] ज्ञान रखते हैं, गीता पर भी विवेचन करते हैं, एक प्रसिद्ध नेताके पर्सनल सेक्रेटरी रहे हैं, तब उनसे परिचयमें आनेका कौतूहल प्राप्त हुआ और हर्ष है कि मेरे हृदयमें उत्तरोत्तर उनके लिये आदरके भाव जमते ही गये। हम सब उन्हें 'लालाजी' कहा करते थे।

शुरू-शुरूकी बात है, हम अभी एक-दूसरेके परिचयमें पूरे तौरसे नही आये थे कि लालाजीने एक पत्र बाहर भेजनेके लिये हिन्दीमें लिखा। जेलमें तीन माहमें एक कार्ड लिखनेको मिलता है, पर हमें जवाबी पत्र मिलने और उनको लिखकर भेजनेकी रियायत मिली हुई थी। जेलमें प्रत्येक पत्र अधिकारियों द्वारा पढ़े जानेपर हमको मिलता तथा डाकमें डाला जाता था। हममेंसे बहुत-से हिन्दीमें पत्र लिखते थे और जेल अधिकारी हिन्दी न जाननेके कारण हम लोगोंमेंसे एक दूसरेसे पढ़वा लेते थे। लालाजीने भी पत्र हिन्दीमें लिखा था, अतः वह मुझसे पढ़वाया गया। पत्र किसी महिलाके नाम था। मै नही चाहता था कि मै उसे पढ़ूँ। मै वैसे ही किसी दूसरेके पत्र पढ़ना सभ्यताके विरुद्ध समझता हूँ, उसपर भी वह महिलाके नाम था। अतः पहले तो मैंने ज़रा टालमटूल की, पर यह सोचकर कि न पढ़ूँगा तो जेलवालोंको पत्रपर शक होगा, न जाने वह फिर किससे पढ़वायें अथवा पत्र डाकमें भेजें ही नहीं। मन ही मन पत्र पढ़ना प्रारम्भ किया। पत्र जेल-अधिकारियोंको सुनाकर पढ़नेकी ज़रूरत नहीं थी। वे तो केवल हमसे इतना विश्वास चाहते थे कि पत्रमें ऐसी-वैसी गवर्नमेण्ट या जेलके ख़िलाफ़ बात लिखी न चली जाये और पत्रमें ऐसी कोई बात नहीं है, यह विश्वास दिलानेपर वे सन्तोष कर लेते थे। और सच

बात तो यह है कि हमने शायद ही विश्वासघात किया हो। यद्यपि पत्र ज़ोरसे पढ़नेका उनकी ओरसे आदेश नही था, पर मन ही मन समूचे पत्र पढ़नेका स्वाँग तो खेलना पड़ता ही था, ताकि उनका विश्वास बना रहे। लालाजीने किसी महिलाको सम्बोधित करके आगे लिखा था—"तुम अब जीवन पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्यपालन करनेकी भावना रखती हो, यह पढ़कर मुझे हर्ष हुआ।" इससे आगे पत्र पढ़ना मेरे अन्तःकरणने अस्वीकृत कर दिया। इतनी गोपनीय बात पढ़ लेना और वह भी ऐसे व्यक्तिकी, जिसे मै आदरकी दृष्टिसे देखता हूँ, मेरे कायर मनसे नामुमकिन था। पत्रमें राजी ख़ुशीके अलावा और कुछ नही है, यह कहकर मैंने वह पत्र लेटरवक्समें डालनेको दे दिया।

पत्र तो चला गया, पर मेरे पापी मनमें हलचल मचा गया। यह पत्र लालाजीने अपनी स्त्री, बहन या पुत्री आदिमेंसे किसको लिखा कुछ समझमें नही आया, क्योंकि नामसे पहले केवल 'प्रिय' लिखा हुआ था और यह विशेषण स्त्री, बहन और पुत्री सबके लिये इस्तेमाल हो सकता था। अतः यह समझमें न आया कि यह लिखा किसको है? फिर भी है तो कोई लालाजीकी आत्मीय न? तब क्या लालाजी-जैसे देवता पुरुषके घरमें भी अभीतक व्यभिचारका ताण्डव था? हृदयमें एक आँधी-सी उठ खड़ी हुई। मैंने ऐसा पत्र क्यों पढ़ा, जिसके पढ़नेसे मेरे हृदयमें किसीके प्रति सद्भावनाएँ कम हों। मुझे काफ़ी पश्चात्ताप-सा भी हुआ, पर मेरे छिद्रान्वेषी कलुषित हृदयने यह बात मजबूतीसे पकड़ ली। जितना ही मै उसे भुलानेका प्रयत्न करता, लालाजीको देखते ही वह बात उतनी ही हरी हो जाती।

आठ-नौ माहके बादकी बात है, बैरिकमें बन्द हो जानेपर रात्रिको हस्बदस्तूर मेरे स्थानपर गोष्ठी जमी हुई थी। उस निठल्ले वक्तमें अच्छी-बुरी दुनिया भरकी सभी बातें होती थी। मनोरंजन हो रहा था कि मैंने दूर बैठे हुए एक साथीकी ओर इशारा करते हुए हँसानेकी नीयतसे कहा कि—

"देखो, यह अपने मनमें सोचता होगा कि—ये लोग भी कैसे......।"

वाक्य मेरे मुँहसे पूरा निकला भी न था कि कि लालाजीने मुझसे धीरेसे कहा– "देखो, हमारे बारेमें कोई कुछ सोचे या न सोचे, पर हमें दूसरेके मनमें क्या है, यह नही सोचना चाहिए। हमारे लिये सोचनेको और बहुत-सी बातें हैं। हमारे बारेमें कोई क्या सोचता है और क्या कहता है, इसकी फाइल हम क्यों बनायें। अपने जीवन-पथमें हमें बहुत-सी उपयोगी बाते सोचनी पड़ती हैं। फिर क्यों न हम वही बातें सोचें जो हमें अपने लक्ष्य तक निष्कण्टक पहुँचा दें। हमें तनिक भी हलके बना देनेवाले विचार अपने पास भी नही फटकने देने चाहिएँ, और तुमसे तो मै ऐसी मनोवृत्तिकी क़तई आशा नही रखता था।"

लालाजीने अपने मनकी बात किन शब्दोमें और किस ढंगसे कही, यह तो अब याद नही, पर भाव यही थे। मेरे ऊपर घड़ों पानी पड़ गया। फिर उन्होंने जरा औरोंको भी सुनी जाने लायक आवाज़मे कहा—"देखो, बुरी बान पड़ने देर नहीं लगती। प्रारम्भमें नदीका उद्गम अत्यन्त सूक्ष्म होता है, पर धीरे-धीरे वही महान् रूप धारण कर लेता है। बटके वृक्षका बीज भी शुरूमें बहुत छोटा होता है, पर समय पाकर वही विशाल बन जाता है। साँपका जरा-सा विष मनुष्यके एक रोम-छिद्रमें प्रवेश होकर सारे शरीरमें फैल जाता है, उसी तरह पाप वासनाएँ, खोटी आदतें, कलुषित भावनाएँ प्रारम्भमें प्लेगके कीड़ेकी तरह दृष्टि-अगोचर होती है। यह भेड़ बनकर आती है पर शरीरमें प्रवेश करते ही रौद्र रूप बना लेती है। व्याघ्रसे बच जाना सरल, पर गो-मुखी व्याघ्रसे बचना ही बुद्धिमत्ता है। पाप भी गो-मुखी व्याघ्र है। साँपके चिकनेपन और आगकी चमकसे जैसे बालक आकर्षित होता है वैसे ही प्रारम्भमें इनका सौम्य रूप देखकर मनुष्य भुलावेमें आ जाता है। बहुत ही संयम और सतर्कतासे रहा जाये तभी इनके विषैले प्रभावसे बचा जा सकता है।" कुछ ऐसे ही शब्दोंमें लालाजीने मुझ छिद्रान्वेषीको समझाते हुए आगे कहा—

"मुझमें भी अनेक खोटी आदतें न जाने कब और कहाँसे चिमट गई है। हम अपनी ऐसी बहुत-सी कुटेवोंको भी नही जान पाते, जिनके कारण हमारे

मित्र, पड़ोसी और कुटुम्बी हमसे तंग रहते है, जो हमें जनताकी दृष्टिमें हलका, उपहासयोग्य और घृणित बनाती है । हम जिन्हें हार समझकर चिमटाये रहते हैं वह हमारे काट खानेको साँप होती है । कहनेको तो देखिये बहुत मामूली-सी आदत है परन्तु मुझे इसने एक बार बहुत-ही नीचा दिखाया। आपने नोट किया होगा कि मैं बातचीतके दौरानमें—"समझे कि नही" अक्सर कहता हूँ । यद्यपि मेरा यह तकिया कलाम अब बहुत कुछ कम हो गया है, फिर भी पूरी तरहसे अभी नही छूटा है। मै एक बार महात्मा गाधीजी-से मिलने गया । दस मिनिटकी बातचीतमें मैंने दसों बार "समझे कि नही" प्रयोग किया और महात्माजी भी "जी समझ रहा हूँ" उत्तरमे कहते रहे। मुझे अपनी इस उद्दण्डताका तनिक भी ज्ञान न हुआ । महात्माजीसे मिलकर बाहर आये तो साथीने व्यंग करते हुए कहा—"ओ हो ! अब तो आप महात्माजीको भी समझानेकी क्षमता रखते है।" मैंने अचकचाकर पूछा तो उन्होंने मेरे तकियाकलामकी बात कही। उस समय मुझे जितनी लज्जाका अनुभव हुआ, मै आपको बता नही सकता ।

फिर बोले—"देखो दुनिया हमें भला कहती है, इसीसे अपनेको भला समझकर हमें भूल नही जाना चाहिए। दुनियाका क्या है ? भलेको बुरा और बुरेको भला कहते हुए उसका बिगड़ता क्या है ? पतिव्रता सीताको वह कलंक लगा सकती है और वेश्याको वह मंगलामुखी कह सकती है । इसलिए हमें अपने अन्तर्चक्षुसे देखना चाहिए कि हम क्या है ? कही हम आपेमें भूलकर स्वयं तो धोखा नही खा रहे हैं। दुनिया हमारा आदर करती है, केवल इसीलिये तो हमें महात्माके पदपर नही बैठ जाना चाहिए। महात्मा पदपर तो हम तभी आसीन हो सकेंगे, जब अन्दर छुपे हुए चोरको निकाल बाहर कर सकेंगे । दुनिया हमारे अन्दरके अवगुणोंको चाहे न देख सके, पर यह चैतन्य-स्वरूप ज्ञानमयी आत्मा तो सब कुछ देखती है । यह तो उस छुपी हुई ग्लानिके आगे नही पनप सकती । इसके विकासके लिये तो उस दुर्गन्धको निकालना आवश्यक है ।"

"मुझे ही देखो न ! मै रोजाना ज्ञानकी बातें बघारता हूँ, पर जितना कहता हूँ उसका सौवाँ हिस्सा भी अपनेको नही बना पाता। मुझसे तो मेरी पत्नी ही हजार दर्जे श्रेष्ठ है। इसी हफ़्तेमें उसके दोनों भाई भरी जवानीमें मर गये। एक बी० ए० की और दूसरा वैद्यककी अन्तिम परीक्षा देकर घर आया था, ७ रोजमें मामूली बुखारमें दोनों चल बसे। मैंने सुना तो रुलाई आ गई, पर पत्नीका पत्र आया है कि उसके पढ़नेसे मालूम होता है वह संसारकी मोह-मायासे बहुत ऊँची हो गई है।"

कहते हुए उनका गला भर आया, उन्होंने वह पत्र मेरे सामने डाल दिया। पत्रमें भाइयोंकी मृत्युके बारेमें दिलासा देनेके बाद लिखा था—"जीवनधन ! समझते हो, मैं आपका जेल-जीवन, कृश शरीर और वह फटे-पुराने कपड़े देखकर घबरा जाऊँगी, इसीसे तो मुझे जेलमें दर्शनार्थ आनेकी आपने अनुमति नही दी। आपकी अनुमति नही है तब नही आऊँगी। पर, प्राणनाथ ! मैं स्वयं वीर न सही, वीर-पत्नी तो हूँ। जिसका पति देश-सेवाके लिए जेलकी यन्त्रणाएँ सह रहा है, वह घबराएगी क्यों ? उसके लिए तो मुख ऊँचा करनेका समय ही अब आया है। जहाँ देश-सेवाके लिए बिलखते बच्चोंको छोड़कर नारियाँ जेलमें जा रही है, वहाँ आप मुझे क्या इतनी गई-बीती समझते है कि मै स्वयं तो जेल न गई, पर अपने पतिके जेल प्रवासपर भी दुःखी रहूँगी ?" आगे लिखा था—

"सर्वस्व ! सुना है गांधी-अर्विन समझौता हो गया तो सब राजनैतिक क़ैदी छोड़ दिए जाएँगे। तब आप भी जेल-मुक्त होंगे—इस उपलक्षमें क्या आप मुझे एक उपहार देंगे ? मै आपसे इस अवसरपर दामन फैलाकर ब्रह्मचर्य्यकी भीख माँगती हूँ। जहाँ आपने देशके लिए इतना कष्ट सहा, वहाँ मेरे लिए इतना त्याग और सही। भगवान्की दयासे बाल-बच्चे भी है अब क्यों अधिक ग़ुलाम उत्पन्न किए जाएँ। मेरी आन्तरिक अभिलाषा है कि हम अब ब्रह्मचर्य्यसे रहकर लोक-सेवामें हाथ बटाएँ। क्या आप

जेलसे ब्रह्मचर्य्यका व्रत लेकर आएँगे ? प्राणनाथ, मेरे मनकी अन्तिम साध पूरी करो.......।"

पत्र आगे न पढ़ा गया। जैसे कलेजेमें किसीने घूँसा मारा हो। अरे छिद्रान्वेषी पापी मन! इसी साध्वीके प्रति तुझमें मैल भरा था! प्रायश्चित्त स्वरूप माँ कहकर उसे मन ही मन प्रणाम किया।

बिहारीलाल

भाई बिहारीलाल उन वलबटेरोंमेसे थे, जो सन् ३० में गाँधीकी आंधीमें उखड़कर किनकलावका नारा लगाते हुए मोण्टगुमरी जेलमें आ पड़े थे।

मै भी उन दिनों उसी ख़ैराती होटलमें रोटियाँ तोड़ रहा था। यारोंसे मालूम हुआ कि दिल्लीसे एक और जत्था आया है और उनके साथ एक बुद्धू भी आ फँसे हैं। मनुष्यका स्वभाव प्रायः विनोदी होता है। इस ससुराल-प्रवासमें एक-न-एक विनोदी जीव फँसा ही रहता था। दस-पन्द्रह रोज़से कुछ इनका अभाव खटका ही था, कि भगवानने जेलका फाटक खोल मनकी मुराद पूरी की।

बान वटनेको वैठे ही थे कि यारोंके मजमेमें बिहारीलाल भी आ धमके। शक्लो-शबाहत देखने क़ाबिल, अल्लाह मियाँने खुद अपने हाथोंसे शायद इन्हें गढ़ा था। चाल इनकी चीना औरतसे भी शोखी भरी। हँसीमें अजीब बाँकपन। आँखे अलवत्ता छोटी, गोल और चुन्धी थी, पर हँसनेमें कुछ ऐसी खिलती थी, कि देखते बनती थी। नारियल जैसे सिरपर नहा-धोकर जब आप तेल चुपड़ लेते थे, तो मक्खियाँ मुबारिकबाद देने आती थी। लोग उन्हें ठेकेदार कहते थे; परन्तु मैंने उनका नाम मिस छछूँदर फिट किया। अपना अनोखा नाम संस्कार होते देख बिहारीलाल खिल-खिलाकर हँस पड़े। यारोंका उत्साह बढ़ गया। उँगली पकड़ते ही पहुँचा पकड़नेकी दावत मिली। फिर तो शनैः शनैः तीतर, कबूतर,

---

बिहारीलाल विनोदी स्वभावके थे। उनसे इसी तरहका विनोदी व्यवहार था। अतः उसी विनोदी ढंगपर यह घटना लिखी गई थी और यह हंसमें (शायद सन् ३३ में) प्रकाशित हुई थी। पाठकोंको इस स्तम्भमें लिखनेका यह ढंग शायद अखरेगा इसके लिए मै मजबूर हूँ, क्योंकि जो घटना जैसी हो उसे वैसी ही भाषामें लिखना मुझे उपयुक्त मालूम हुआ।

बटेर, गिरगट, मेंढक आदि कितने ही लाड़-प्यारके नामोसे सम्बोधित होने लगे । और तारीफ़ तो यह है, कि उपर्युक्त नाम सुनकर उन्हे एक प्रकार का आह्लाद ही होता था । उस समय तो इन सब उपनामोका एक श्लोक भी बन गया था; पर अब अक्लपर जोर देनेपर भी नही सूझ पड़ता और नया लिखनेमें असलियतका लुत्फ जाता है ।

गाँधी-अर्विन समझौतेमे सारे बलबटेर उड़ गये, बिहारीलाल फँसे रह गये । खुशक़िस्मतीसे उनके सत्संगका लाभ उठानेका मुझे भी दो-तीन यारोंके साथ रहनेका मौका मिल गया । भीड़ छट जानेपर असली जौहर देखनेका अवसर मिला । प्रातःकाल उठे और हजरत सन्ध्यापर बैठ गये, कितने ही उपसर्ग किये जाते, पर टससे-मस न होते, अलबत्ता मुस्कराते जरूर रहते । हजरत सन्ध्यापरसे उठें, कि यार लोग उनके हिस्सेकी दाल-तरकारी पहले ही चट कर जाते, मगर आप रूखे रोट ही टमर-टमर निगल जाते और इस अन्दाजसे, गोया नूरजहाँ बेगम नाश्ता कर रही हो । रोटी ठूँस लेनेके बाद सबसे पहले अपना बान बट लेते, फिर बारी-बारीसे सबका हाथ बटाते । दोपहरको दलिया और चने आते, तो हज़रतकी नीयत सबके हिस्सेको चट कर जानेकी रहती, पर यह दाँव रोज़ नही चल पाता । यही उनकी दैनिक-चर्या थी ।

अब हमारी भलमनसाहत मुलाहिज़ा फर्माइये । हज़रतके सोते हुए कानमें पानी डाल देना, मुँहपर स्याही उँडेल देना, भँवें पाउडर लगाकर साफ कर देना, पायजामेंका इज़ारबन्द काट देना, कपड़े भिगो देना, बिस्तरे छिपा देना, चलते हुए खोपड़ीपर चपत कस देना, एक दूसरेको धक्का दे देना, अपने पास बुलाकर पहले मीठी-मीठी बातें करना, फिर दुतकार देना, और उनके कुढ़नेपर खिलखिलाकर हँस पड़ना, यह हमारा दैनिक कृत्य था ।

दर्याफ़्त करनेपर मालूम हुआ कि आप मेरठ ज़िलेके किसी गाँवमें भंग वगैरहकी ठेकेदारी करते थे, इसीलिये आप ठेकेदार सम्बोधनपर बड़े

अधिकारपूर्वक बोलते थे। पिकेटिंगके ज़मानेमें आपके यहाँ भी धरना दिया गया। एक रोज़ रातको दो स्वयंसेवक आये और इनसे भोजन देने और रातको वही पड़ रहनेके लिए प्रार्थना करने लगे। तब आपने फर्माया—"ससुरो, हमारे यहाँ ही पकेटिंग करो और हमीसे रोटी और सोनेकी जगह माँगो! चलो निकलो यहाँसे। तुम्हारी ऐसी-तैसी!"

स्वयंसेवकोंने भविष्यमें धरना न देनेका विश्वास दिलाया, तब आपने प्रेमपूर्वक उन्हें भोजन बनाकर खिलाया और उन्हें अपनी चारपाई सोनेको देकर स्वयं ज़मीनपर पड़ रहे। सवेरा होते ही स्वयंसेवक उठे और बड़े इत्मीनानसे आपकी ही दुकानपर धरना देने बैठ गये। इस कलियुगमें उपकारकी ऐसी मिट्टी पलीद होते देख आपको वैराग्य-सा हो गया और दुकान बन्द करके आप दिल्ली भाग गये और यहींसे मोण्टगुमरी——जिसे हम खैराती होटल या ससुराल कहा करते थे——फेंक दिये गये।

देहाती होनेसे आपकी भाषा भी बड़ी ऊबड़-खाबड़ थी। क़ैंचीको कंच्ची, सिविलसर्जनको सलेटसर्जन, वालिण्टियरको बलबटेर, इन्क़लाब-को किनकलाव या ऐनकलाब, मिठाईको मठियाई, पिकेटिगको पकेटिग कहकर हमारे पेटोंमें बल डालते रहते थे।

स्वराज्य क्या है, यह उन्हें मालूम न था। राष्ट्रिय संग्राम क्यों छिड़ा हुआ है, जेल लोग किसलिये जा रहे है, गान्धी किस बलाका नाम है, इसका उनके सीगको भी पता न था, और सच बात तो यह है कि उनके मौजी दिमाग़में इन सब बातोंके रखनेकी गुंजाइश ही न थी।

उनकी दिव्य दृष्टिमें धर्मोमें श्रेष्ठ धर्म आर्यसमाज और शास्त्रोंमें शास्त्र सत्यार्थप्रकाश था। इन्हीकी अकसर दुहाई देते थे, बात-बातमें इन्हीका हवाला देते थे। अपने हस्ताक्षर भी कर लेते थे, यह तो मुझे इस समय याद नहीं, पर सत्यार्थप्रकाश उन्हें कण्ठस्थ था। ज़रा देरसे सोकर उठे, और उन्होंने इसे उक्त ग्रन्थराजसे कुटेव सिद्ध कर डाला। खाना खाते समय ज़रा हँसे नही कि सत्यार्थप्रकाशका हण्टर पड़नेमें चूक नहीं

होती। ज़रा मजाक किया और उन्होंने उसे व्यभिचार प्रमाणित किया। ग़रज़ यह है कि सोते-उठते, खाते-पीते उनके इस बेमौसमी उपदेश पीते-पीते हमारे पेट बढ़ गये, पर उन्हें रहम न आया। रात्रिको ज़रा साँस लेनेका अवकाश मिलता, जी चाहता कि तफ़रीहकी बातें करें कि आप बीचमें कूद पड़ते। वही अपनी राम-कहानी। फ़िज़ूल बैठे क्या करते हो, सन्ध्या क्यों नही कर लेते। सन्ध्या नही आती है, तो आओ भजन ही गावें। और लगते फिर पंचम स्वरमे अलापने।

यार लोग तो इस मौक़के लिए उधार खाये बैठे ही रहते थे। एक कहता—"बड़े भाईकी स्वर-लहरी तो देखिये, कट्टो गिलेहरी भी झेंप जाय।" दूसरा कहता—"अमाँ स्वरको क्या, गलेके लोचको देखिये, गोया बुढ़िया नानी चक्की पीस रही हो।" कोई कहता—"अजी, तरुन्नुम तो देखिए, बैशाखनन्दन भी ची बोले।" कोई कहता—"शायरी तो मुलाहिज़ा फर्माइए, तुलसी, सूर स्वर्गमें बैठे अपना सिर धुन रहे होगे।"

यारोंके बढ़ावेमें उन्हें कुछ अजीब लुत्फ़ आता था। यही गायन फिर नृत्यमें परिवर्त्तित हो जाता। यह नाच भारतकी कौन-सी प्राचीन नृत्य-कलाका द्योतक है, यह तो हम नही जानते थे; किंतु हम इसे मेंढ़क-नृत्य कहते थे।

छः माहके बाद उन्हें उस ख़ैराती होटलसे धक्के मिले, तो मुँह लटकाये हुए सीधे दिल्ली आये और यही हवन-सामग्री और भजनोंकी किताबें फेरीमें बेचकर चैनकी बंसी बजाने लगे।

बिहारीलालके दस माह बाद हम भी दुत्कार दिये गये। अपना-सा मुँह लेकर हम भी दिल्ली चले आये। सिरपर झेंप सवार थी, कि कोई देख न ले किसीको ख़बर तक न की। अँधेरे-अँधेरेमें घर पहुँचे; पर न जाने कौन शैतान कानों-कान कह आया कि आवारा मालपर चीलकी तरह मजमा टूट पड़ा। इनमें अपने-पराये, सगे-सम्बन्धी, यार-दोस्त सभी थे। पहले प्रश्नोंकी बौछार हुई, फिर सहानुभूति प्रदर्शित की गई, फिर तारीफ़ों-

के पुल बाँधे गये, जिन्हें सुनकर मेरी छाती मारे आत्म-गौरवके फूली जाती थी, जी चाहा कि कह दूँ, कि जबतक स्वराज्य न मिलेगा, घर पानी तक न पीऊँगा, और चल दूँ सीधा अभी जेलको; पर मनोभाव ज़ब्त कर गया।

आत्म-प्रशंसा सुननेसे अभी जी भरा भी न था कि उपदेशोंकी करारी चपतें मुँहपर पड़ने लगी। एक बोले—"दो सालमें शरीरका ढेर कर लिया, घर बर्बाद हो गया सो अलग, क्या आया हाथमें ? मुफ़्तमें सत्यानाश कर लिया।"

दूसरे बोले—"ख़ैर, अब जो हुआ सो हुआ, अब आइन्दाके लिये कान पकड़ लो। तुम्हारे एकके न होनेसे कुछ बनता-बिगड़ता नही है।"

तीसरे अत्यन्त नज़दीकी बोले—"भाई, तुम्हारा क्या बिगड़ा, मज़ेसे जेलमें जा बैठे, हमें न देखो रोते-रोते आँखें सुजा ली और काया मट्टी हो गई, सो मुफ्तमें।"

इसी प्रकार उतार-चढ़ावकी कई रोज़ तक बातें सुननेको मिली। ५-६ रोज बाद बिहारीलालने सुना, तो दौड़े हुए आये। देखते ही दिल बाग-बाग़ हो गया। मनमें सोचा जेलकी हरकतोंको दुहराकर यह मुझे शर्मिन्दा जरूर करेगा। मगर बिहारीलाल बिहारीलाल थे। बातें करते हुए हाथीकी तरह झूम रहे थे, चलते समय मेरे आगे साठ रुपयेके नोट रख दिये। मैंने हैरानीमें आकर पूछा—"बड़े भाई ! यह क्या ?" वह बोले—"सवा दो सालमें घर आया है, यहाँ क्या खत्ती गढ़ी हुई है, जिसे तू खायगा। ८-९ महीनेमें यही जोड़ पाया हूँ, यह तेरे निमित्तके ही है।" मेरे इनकार करनेपर बोला—"दिल्लीवाली शेखी तो रहने दे। डर मत, मै माँगूँगा नहीं, तेरे लिए ही जोड़कर रक्खे है।"

न मालूम अपनी देहाती ज़बानमें बड़े भाई क्या-क्या बकते रहे; पर मै उस समय अपने मनमें रो रहा था। बड़ी मुश्किलसे उनके रुपये लौटाये। नोट उन्होंने अण्टीमें लगा लिये; पर जिस उमंगसे वह मेरे पास आये थे,

उस उमंगसे वापिस नहीं गये। उनकी इस उदासीका कारण स्पष्ट था, पर मै विवश था।

मुसीबतज़दासे मिलने, सहानुभूति प्रदर्शित करने तो बहुत आते हैं; पर विहारीलाल-जैसे बिरले ही आते हैं। न मालूम अब विहारीलाल कहाँ है। मुद्दतोंसे दर्शनों तकको भटक गया। आज पुरानी स्मृति उभर आनेपर दिलकी भड़ास कागज़पर ही बखेरकर पूरी कर रहा हूँ।

भाई-भाई

मोण्टगुमरी जेलमें हमारी बैरिकपर एक पीली वर्दीवाला मुसलमान नम्बरदार तैनात था। वह पाँचों वक्त नमाज़ पढ़ता और बाक़ी टाइममे क़ुरान। शक्लोशबाहतसे भलमनसाहत टपकती थी और सचमुच था भी वह ऐसा ही। उम्र लगभग ५०-५५ की होगी। २० सालकी सजा पूरी करनेमें ५-६ माह बाक़ी रहे थे। उसे देखकर कभी ख़याल आता कि न जाने किस भलेमानसने इस ईसामसीहकी भेड़को दूसरेके भुलावेमें क़ैद किया है? इस बछियाके ताऊसे क्या गुनाह वना होगा? और कभी खयाल आता अजी, ऐसे ही भोली-भाली शक्लवाले क़हर ढ़ाते हैं। इन जैसोंका वह आलम है कि 'हो जाएँ खून लाखों, लेकिन लहू न निकले', कुछ न कुछ हरकत की होगी तभी तो हज़रत धर लिये गये, वर्ना किसका सिर फिरा है जो नमाज़ अदा करते और कुरान पढ़ते हुए इन्हें पकड़ता? एक बार उससे पूछा भी तो हँसकर टाल दिया बताया नहीं।

उसी जेलमें उन दिनों उसका छोटा भाई भी क़ैद था। अनेक जेलोंमें पृथक्-पृथक रहते हुए सौभाग्यसे वे दोनों वहाँ मिल गये थे। दोनों एक दूसरेसे बहुत फ़ासलेपर रहते थे, पर कभी-कभी मिलन हो जाता था। छोटे भाईसे पूछा तो वह वोला—"मेरी नालायक़ीसे यह सज़ा भुगत रहा है। मैंने एक आदमीको क़त्ल कर दिया था, जब पुलिस मेरी तलाशमें आई तो इसने खुद क़ुसूर तस्लीम कर लिया। भाईको फँसते देख मैंने अपना गुनाह क़ुबूल कर लिया। पुलिसने मुझे भी थाम लिया। मगर यह न माना और अदालतमें भी अपनेको ही मुजरिम साबित करनेकी कोशिश की। मैं अपनेको क़ातिल कहता था और यह अपनेको। आख़िर अदालतसे हम दोनोंको २०-२० सालकी सज़ा हुई।"

मैंने पूछा "तुम दोनोंने अपराध क्यों स्वीकार किया? एकने मंज़ूर

कर लिया था तो दूसरा चुप रहता ताकि वह बीवी-बच्चोंकी परिवरिश तो कर पाता।"

वह बोला—"बाबू ! मै तो गुनाहगार था ही, इसलिये भाईको फँसते देख मै कैसे चुप रहता ? मैंने खुद अपना फेल तस्लीम कर लिया ताकि बेक़ुसूर भाई बच जाए। मगर वह न माना, बोला—"जब छोटा भाई फाँसी चढ़ जायगा तब मैं ही जीकर क्या करूँगा ?"

मैंने कहा—"उसे अपनी स्त्रीका तरस न आया, उसके रोकेसे भी न रुका।"

छोटा भाई बोला—"बाबू ! औरत तो पराये घरकी होती है, उसके रोकनेसे वह क्या रुकता ? भाई फिर भी भाई है। संसारकी सब न्यामतें मयस्सर हो सकती है, लेकिन सगा भाई कहाँ मिल पाता है ? उसके इसी खयालने उसे मजबूर कर दिया। बाबू ! यह मेरा बड़ा भाई ऐसा शील स्वभाव है कि फ़रिस्तोंमें भी मिलना मुश्किल है।"

ओह ! अशिक्षित और जंगली भी इतनी भावुकता और जीवनमें प्यार लिये फिरते है यह पहली बार मुझे अनुभव हुआ।

———— ————

सुन्दर हलालख़ोरी

वह जातिकी हलालख़ोरी (भंगिन) है। आयु ५० के लगभग और नाम है "सुन्दर"। देहलीमें रहते हुए मुझे ३० वर्ष हुए, तभीसे वह मुझे जानती है। मुझे बचपनसे देखा है और आयुमे माँके बराबर है, इसलिये वह हमेशा मेरा आधा नाम लेकर बोलती है और वही मुझे अच्छा मालूम होता है और अब जब कभी वह लाड़-प्यार या बड़प्पनके ख़यालसे मेरा पूरा नाम लेती है तो मुझे वह अच्छा मालूम नही होता। और मैं कह देता हूँ—पहला ही नाम ठीक है, वह हँसने लगती है।

जब छोटा था, तब कहती—"मेरा जुध्या भगवान् करे खूब कमाए।" जब कमाने लगा तो कहने लगी—"मेरे जुध्याका व्याह हो!" व्याह हुआ तो बच्चेके लिये दुआएँ माँगने लगी। बच्चा भी हो गया, पर उसकी दुआओंकी सीमा नही, बढ़ती ही जा रही है।

वह भंगिन है, जिजमानोंकी मंगल-कामना करना उसका काम है। इन्हीं बातोंके एवज़में तो हम लोगोके यहाँसे उनका भरण-पोषण होता है। यह ख़याल आम लोगोका है और कह नही सकता, मेरा भी पहले यह ख़याल था, या नही।

जेल चला गया तो माँके रोज़ानाकी तरह रोटी और माहवारी पैसे देनेपर लेनेसे इनकार कर दिया। माँने कहा—"जी! तुम अपना मेहनताना लो, मुझे कोई वह भूखी-नंगी थोड़े ही छोड़ गया है!" सुन्दर हलालख़ोरी आँखोंमें आँसू भरकर बोली—"वह आयेगा, तब उसीके हाथसे लूँगी।" मेरे हाथसे या माँके हाथसे लेनेकी बात नहीं थी। बात दरअसल उसके मनमें यह थी कि जिसका बेटा जेल चला गया है, उससे मेहनताना लेती क्या अच्छी लगूँगी?

जेलसे आया, तब माँने सुन्दर हलालख़ोरीकी बात कही। साथ

ही यह भी कहा कि मकान मालिकने (जो अपनी जातिके ही थे) तेरे जाते ही किराया बढ़ा दिया था।

मकान-मालिककी बात अनसुनी-सी करके सुन्दर हलालखोरीके इस त्यागकी बात कई बार सुनी। सोचा, मेरे पास क्या है, जो उसे इस मेहरबानीकी एवज़में दे सकूँ।

जो बन सका वह दिया, तो माथेपर तीन बार चढ़ाया ज़मीनको चुचकारा। दामन फैलाकर दुआएँ दीं और कहा--"मुबारिक आजका दिन, जो अपने जुध्याके हाथसे मुझे यह लेहना नसीब हुआ।"

मेरा व्याह हुआ तो माँने तीहल दी। तीहल लेकर फूली न समाई। पहनकर सारे मुहल्लेको दिखाई--"मेरे जुध्याकी ससुरालसे यह तीहल मेरे वास्ते आई है।"

जिस मकानमें वह कमाने आती थी, वह मैंने बदल लिया है, फिर भी जब कभी मिल जाती है तो देखकर हरी हो जाती है। मैं सोचता हूँ, इन अछूतोंमें भी इतना त्याग, इतना स्नेह कहाँसे आया? कही हम उच्च कहलानेवालोंके गुण तो इन्होंने नहीं छीन लिये?

एक चोरकी आत्मकथा

जवानीका आलम, मदभरी आँखें, चेहरेपर दो चुल्लू ख़ून, सुता हुआ कसरती जिस्म और उसपर पुश्तैनी पेशा चोरी। न कमानेकी फ़िक्र, न नौकरीकी चिन्ता, न घाटेका डर। आठों पहर चैनकी बंसी बजती थी, अल्हड़ जवानी आदमीको भुनगा समझती थी! कांधेपर लाठी लेकर चलता तो बे पिये दो बोतलका नशा रहता! जिस घरमें घुस जाता ख़ाली हाथ न लौटता। नाकामयाबी किसे कहते है, यह कभी न जाना! हमारी क़ौमके लोग पुलिसके फंदेमें फँसते तो मैं हँसता और कहता इन गावदियोंको हमारी दिलेर क़ौममें पैदा होनेकी ज़रूरत भी क्या थी? माँ लाड़से कहती—"मेरे बेटेके तो पाँवसे लच्छमी लगी रहती है, बुजुर्गोंकी आन चली आती है इसलिए मजबूरन इधर-उधर जाता है वर्ना दौलतमन्द तो यहाँ आकर इसकी जूतियोंमें दौलत पटक जाएँ।" बीवी कहती—"मेरा शौहर तो बादशाह है, यह काम तो तफ़रीहन करता है। बादशाह जंगलोंमें शिकारको जाते है, मेरा दूल्हा शहरमें शिकार करता है! बादशाह और मेरे शौहरमें कुछ फ़र्क़ थोड़े ही है।"

एक रोज़की बात—चाँद अपने पूरे शबाबपर था। अठखेलियाँ करता हुआ, इश्कका दम भरता हुआ, सितारोंको गुदगुदाता हुआ, फूलोंको मुस्कराता हुआ, बच्चोंको सुखकी नीद सुलाता हुआ, किसीकी दुआएँ लेता हुआ, किसीको तसल्ली देता हुआ और किसीको मचलता हुआ देखकर,

---

एक बार रेलमें सफ़र करते हुए मेरे एक साथीकी एक बूढ़े बूचे आदमीसे भेंट हुई। साथीने ताज्जुबसे पूछा—"कहिये हज़रत! ये कान किसीने उखाड़ लिये है या अल्लाहमियां बनाते हुए ही भूल गये? उस देहाती बूचेने बहुत हील हुज्जतके बाद जो घटना बयान की, वह ज्योंकी त्यों केवल अपनी भाषाका जामा पहनाकर पेश कर रहा हूँ। —गोयलीय

किसीको तड़पता हुआ देखकर एक अजीब बाँकपनके साथ वह गुलशने आसमानपर सैर कर रहा था !

उसकी वोह फबन, वोह निखार, वोह शोखी भरी चाल मेरे कलेजेमें उतर गई। हाथमें लाठी ली और चल दिया गाँवसे बाहर चाँदके साथ-साथ ! हम चोरोंके लिये अँधेरी रात क़ीमती होती है। चाँदनी रातमें घरसे बाहर नही निकलते। इसलिये घरसे चलते वक़्त माँने हैरानीसे देखा, बीवीने आँखो ही आँखोमें कहा—"क्या आज पिये हुए हो, देखते नहीं चाँदनी छिटकी हुई है, ऐसेमें भी क्या कभी बाहर जाना होता है ?" मैंने कहा—"मै कमाईको थोड़े ही जाता हूँ, यूँ ही जरा गाँवके बाहर सैर कर आऊँ, अभी आया ज़रा-सी देरमें।"

एक अँगड़ाई ली और चल दिया गाँवसे बाहर चाँदका खुला रूप जी भरकर देखनेको। वोह सुनसान रात, वोह थकी-माँदी राह, वोह सोया हुआ रेत और वे खड़े हुए पेड़, मुझे आगे बढ़नेसे न रोक सके। मैं आगे बढ़ता ही गया, मै चुपचाप चलता ही गया। यकायक रास्तेसे ज़रा-सी दूरीपर कुछ देखकर ठिठका और पास जाकर देखा तो हैरान रह गया।

उस सुनसान वीरान मैदानमें एक साफ़-सुथरी जगहमें सफ़ेद चादर बिछाये एक देहाती नौजवान अपनी हसीना बीवीके साथ बेमलाल सोया हुआ था। जैसे शेर अपनी मादाके साथ बेखौफ लेटा हुआ हो। शायद वह अपनी बीवीको कही ले जा रहा था और रास्तेमें रात हो जानेसे बीवीके थक जानेकी वजहसे वहीं आराम करने लगा था।

दिल चाहता था कि इसी तरह उस जोड़ेको देखता रहूँ। इस उघड़ी शराबको आँखोंसे पिऊँ। उस हुस्नोइश्ककी जाहिरा तस्वीरको जी चाहता था, किसीको ख़बर न होने दूँ और कलेजेमें छुपाकर रख लूँ। वोह अल्हड़ जवानी, वोह बनावटसे दूर देहाती हुस्न और उसपर यह क़यामत कि उस सन्नाटेके आलममें किस शानसे सोये हुए है, न किसीका ख़ौफ़, न किसीकी परवाह !

अफ़सोस ! वोह नशा, वोह बेख़ुदी क़ायम न रही ! नाज़नीके जिस्मपर चाँदीके ज़ेवर देखते ही पुश्तैनी आदतने तुर्शीका काम किया। सब नशा हिरन हो गया। सोचा, क्यों न लगे हाथ इसके ज़ेवर उतार लूं, सैर भी की और कमाई भी। ख़यालको अमली जामा पहनाया गया। जिस्मपर जो दो-चार चाँदीके ज़ेवर थे, उतारते देर न लगी। नाककी नथ उतारनेको ज्यों ही मैंने हाथ बढ़ाया कि उस नाज़नीने मेरी कलाई पकड़ ली और बोली--"भले मानस ! तुझे मर्द किसने बनाया, किसी जोड़ेको सोते हुए चुपचाप देखते हुए तुझे शर्म न आई और उसपर भी इतनी हिम्मत कि ज़ेवर भी उतार डाले ! मेरी भलमनसाहत तो देख, कि चुपचाप मैं सब देखती रही और तुझे मना न किया ! अब तेरी इतनी जुरअत कि मेरे सुहागकी निशानी एक बची है उसे भी लेना चाहता है। मजबूरन मुझे बोलना पड़ा। अगर अपनी जानकी ख़ैर चाहता है तो नथ उतारना तो दरकिनार मेरा सब ज़ेवर रखकर चुपचाप चला जा।"

कलाई उसने छोड़ दी और उसी तरह इत्मीनानसे लेटी रही। मेरी ज़िन्दगीमें यह पहला वाक़या था। लहमे भरको उस औरतकी इस दिलेरी पर मै सकते-सेमें आ गया। फिर मेरी गैरतने मुझे चुटकी ली--"इसी विर्तेपर मर्द बना फिरता है ! औरतने हाथ पकड़ लिया तो ज़ेवर देकर क्या पुश्तैनी जवाँमर्दीको आज अलविदा कहेगा ?"

पुश्तैनी जवाँमर्दीको दाग़ लगाना मुझे मंजूर न था ! दुबारा नथ-पर हाथ रख दिया ! इस बार वह उठ बैठी और लपककर मेरे दोनों कान पकड़ लिये और झुँझलाकर बोली--"क्यों रे जानवर ! तू अपनी हरकतसे बाज न आया, मै चुपचाप रही तो तैने निरा मोमका ही हमें समझा। ख़बरदार जो ज़रा भी हिलनेकी कोशिश की, वर्ना कान उखेड़ लूँगी"।

यह सब उसने इस शानसे कहा जैसे माॅ बच्चेको धमकाती है, या शैतान बालक कुत्तेके पिल्लेको।

मेरी जवानी यह कब बर्दाश्त करती कि मै कान पकड़वाए बैठा रहूँ

और वह भी एक औरतसे। चाहा कि कान छुड़ा लूं और मियाँ-बीवी दोनों को घसीटकर डाल दूं, किसी कुँएँ तालाबमें ताकि इन्हें मालूम हो, शेरके कान पकड़नेकी क्या सज़ा होती है ?

मगर मेरी उस चाहकी कै कौड़ी उठती ? कान तो उस औरतके हाथमें थे। औरतके हाथमें क्या यों कहिये शिकंजेमें कसे हुए थे। कान छुड़ाने की काफ़ी कोशिश की, मगर सब बेकार। आख़िर जिस्मकी सारी ताक़त लगाकर कान छुड़ानेको जो ज़ोर लगाया तो कान तो छूट गये, मगर उसके हाथसे नहीं, मेरी कनपटीसे। मैं बूचा हो गया।

इस छीना-झपटीमें उसके शौहरकी भी नींद उचाट हो गई। उसने मेरा यह बेहाल देखा तो खिल-खिल हँसने लगा। सबब मालूम होनेपर बोला––"पागल ! तुझे किस शामतने इधर भेज दिया, तू यह नही जानता कि जो इस सुनसान जंगलमें इस तरह सोये हुए है, वे क्या निरे दूध बताशे होंगे ? मर्द होकर एक औरतसे कान उखड़वा लिये, यह तूने अच्छा नही किया। मर्द होनेके नाते मुझे ख़ुद शर्म आ रही है, ये अब चाहे जब ताना दे लिया करेगी, कि मैं मर्दोंके कान उखाड़ लेती हूँ। तेरी यह बुज़दिली मुझे हमेशा खटक देगी।"

उस वक़्तकी मैं अपनी कैफ़ियत क्या बयान करूँ ? मेरा ग़रूर पानी-पानी होकर आँखोसे टपक रहा था। दिल चाहता था कि ज़मीन फट जाए तो उसमें समा जाऊँ। मेरी जवाँमर्दी भीगी बिल्ली बनी हुई थी। उस रोज पुश्तैनी पेशेको हमेशाके लिये खैरबाद कहा और मजदूरी करके पेट भरनेका फ़ैसला किया। ख़ुदाका शुक्र है कि उस बातको ३० वर्ष होनेको आये और मैं अपने फ़ैसलेपर क़ायम हूँ।

हियेकी आँख कब खुलती है

जून १९५० के 'निगार' में "जहाँगीर एक शिकारीकी हैसियतसे" ऐक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें जहाँगीर वादशाहकी डायरी से शिकार सम्बन्धी विवरण उद्धृत किये गये है। उस डायरीके दो अंश यहाँ दिये जा रहे है। बादशाह जहाँगीर लिखता है—

"एक बार मेरे ज़हनमें यह बात आई कि शुरूसे इस वक़्ततक जितने जानवर मैने शिकार किये है, उनकी फ़ेहरिस्त बनाई जाय। चुनांचे मैने अखबारनवीसोंको हुक्म दिया और उन्होंने जो फेहरिस्त बनाई उससे मालूम हुआ कि बारह सालकी उम्रसे आजतक २८५३२ सिर शिकार किये हुए जानवरोंके मेरे सामने पेश किये गये।"

आगे इन मारे हुए जानवरोंके नामोंकी तालिका दी हुई है, जिसके उद्धरणकी हम आवश्यकता नही समझते। अन्तिम आयुमें जहाँगीरने शिकार न खेलनेकी प्रतिज्ञा कर ली थी। वह प्रतिज्ञा क्यों की गई, इस वाक़येका बयान वह इस प्रकार करता है—

"मेरे बेटे शाहजहाँका महबूब (अत्यन्त चहेता, प्यारा) बेटा 'शुजा' जिसने नूरजहाँ बेगमकी आग़ोशमें परिवरिश पाई थी, और जो मुझे जानसे ज़्यादा अज़ीज़ (प्रिय) था बीमार हुआ। बहुत इलाज हुआ, लेकिन कोई फ़ायदा नही हुआ तो मैने बारगाहे रब्बुलअज़त(दयालु ईश्वरके दरबार) मे दुआ (प्रार्थना) की। उस वक़्त मुझे ख़याल आया कि सत्रह साल क़ब्ल मैने ख़ुदासे अहद (वायदा) किया था कि जब मेरी उम्र ५० से मुमतादज़ हो जायगी तो मै शिकार छोड़ दूंगा और मै किसीकी जान न लूंगा। और सोचा कि मुमकिन है इस अहदके पूरा करनेसे शुजा अच्छा हो जाय। चुनांचे मैने इसपर अमल किया और शुजा अच्छा हो गया।"

जहाँगीरकी उक्त डायरी पढ़ते हुए मुझे अपने जीवनकी कई घटनाएँ स्मरण हो आई। ऊँट जब पहाड़के पाससे गुज़रता है तभी उसे अपनी

तुच्छताका आभास होता है। हज़रते इन्सान धन-यौवन, बल, पराक्रम, बुद्धि और सत्ताके अभिमानमें इतना अन्धा हो जाता है कि उचित-अनुचित उसे क़तई नहीं सूझता। जब उसे क़ुदरतकी ओरसे ठोकर लगती है, तभी उसके हियेकी आँख खुलती है।

सन् १९३१ के जाड़ोंके दिन थे। मोण्टगुमरी जेलमें मै भी अन्य सत्याग्रहियोंके साथ बन्दी था। यहाँका जेलर अपने अत्याचारों और क्रूर स्वभावके कारण पंजाबभरमें प्रसिद्ध था। क़ैदियोंपर कम्बल डलवाकर उनकी हड्डी-हड्डी तुड़वा देना, गुदामें मिर्चें भरवा देना, गन्दे हौजमें डुबकियाँ लगवा देना, उसका अदना करिश्मा था। उसका आतंक ऐसा था कि बड़े-बड़े जवाँमर्द क़ैदी उसके नामसे काँपते थे। ये दो भाई थे। बड़ा मुलतान जेलका और छोटा मौण्टगुमरी जेलका दारोगा था। सिक्ख सत्याग्रहियोंपर बड़े भाईने मुलतानमें वह जुल्म किये कि चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। शास्त्रोंमें वर्णित नरकका दारोगा उसके समक्ष हेच मालूम होने लगा। आखिर एक घटनासे उसकी आँखे खुली।

उसकी माँ अक्सर अपने गाँववाले मकानमें रहती थी। ग्रामीण रिवाजके अनुसार वह भी शौचादिके लिये खेतोंमें जाया करती थी। बेटेकी करतूतोंसे गाँवमें भी क्षोभ फैलता जा रहा था। देशद्रोहीकी माँसे भी लोग मन ही मनमें घृणा करने लगे थे। तभी एक रोज़ किसीने हिक़ारत भरे स्वरसे कड़कती हुई आवाज़में कहा—"बुड्ढी! इस टट्टीको उठाले वर्ना ठीक नहीं होगा।"

बुढियाकी हालत इस आवाज़को सुनकर वैसी ही हुई जैसी कि जय-जयकारके नारे सुननेके अभ्यस्त नेताओंकी स्थिति काले झण्डे दिखानेपर होती है। बुढ़िया रोबीले स्वरमें बोली—"ओ रे छोकरे, तू क्या बकता है?"

"मै बकता नही, हुक्म देता हूँ, अन्यथा यह तेरे मुँहमें भर दी जायगी। औरत समझकर तुझसे कुछ नही कहा जा रहा है। वर्ना जैसे तैंने साँप जने है, जी चाहता है तेरा मुँह कुचलकर रख दूँ।"

बुढ़िया मौक़ेकी नज़ाक़तको समझ गई। चुपचाप टट्टी अपने आँचलमें बाँधकर वह सीधी मुलतान अपने बेटेके पास पहुँची। ज़ालिम बेटा माँकी इस हालतको देखकर सिहर उठा, और आइन्दा इस तरहके ज़ुल्म न करनेके लिये प्रतिज्ञा की।

छोटे भाईकी हियेकी आँखें खुलनेका माजरा इस प्रकार है—सन् १९३१ के जाड़ोंका सोमवार था। परेडका दिन था। हम सब खड़े हुए थे और जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट मुआयना कर रहा था। मेरी सीटके ठीक सामने सरदार शेरसिहकी सीट थी। उसके सामनेसे सुपरिण्टेण्डेण्ट और उसका काफिला गुजरा तो वह खड़े होनेके बजाय लेट गया। उसका लेटना था कि हम सबमें बेचैनी फैल गई, कि लो भई, बैठे-बिठाये नागहानी मुसीबत नाजिल हुई। हमारे मस्तिष्कमे अभी यह विचार आया ही था कि जेलर फ़ौरन मुड़ा और घबराकर बोला—"देखो-देखो इसको कोई तकलीफ़ मालूम होती है।" देखा तो वह बेहोश था। उसे जल्दीसे हॉस्पिटल भिजवाया गया। हम लोग जेलरके इस अभूतपूर्व सद्व्यवहारसे चकित थे। मगरमच्छके आँसू सुने थे, देखे नही थे कि वह स्वयं ही बोला—"मेरी ज़िन्दगीमे आज यह पहला वाकया है कि मुझे गुस्सेके बजाय रहम आया। अच्छा हुआ यह कुछ रोज़ पेश्तर बेहोश न हुआ, वर्ना इसकी हड्डियाँ तुड़वा दी गई होती।"

मैं पूछना ही चाहता था कि "क़िबला! आपकी ज़िन्दगीमें यह यकायक इन्क़लाब कैसे हुआ कि वह खुद ही एक ठण्डी साँस भरकर बोला—"हम दोनों भाइयोंके एक भी बच्चा नही है। एक भांजा है उसीको औलादकी तरह पाला-पोसा है। १५-२० रोज़से मियादी बुख़ारसे मुब्तिला है। हज़ार इलाज कर लिये लेकिन दिनपर दिन हालत ख़राब होती जा रही है। अब मैं समझता हूँ कि और भी मेरे बच्चेकी तरह बीमार होते होंगे। मेरी तरह और लोगोंको भी सदमा पहुँचता होगा। आप दुआ कीजिये

कि मेरा बच्चा अच्छा हो जाय। मैं क़सम खाता हूँ कि अब ताहयात किसी पर ज़ुल्म न तोड़ूंगा।"

इस जेलमें मेरे सामने इसके डिप्टी जेलरने एक क़ैदीकी गुदामें खूंटा ठोक दिया था जिससे उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। राजनैतिक बन्दियों-की गवाहियाँ देनेपर जब वह बन्दी होकर जेलमें आया तो पाँवोंमें पड़ता था। काली गऊ बनकर क्षमा कर देनेको गिड़गिड़ाता था। परन्तु बन्दी होनेसे पूर्व क़ैदियोंकी खाल उधड़वा देना मामूली बात समझता था।

अप्रैल १९४१ की बात है मुझे दिल्लीसे डालमियानगर आये ५-७ रोज हुए थे। न नौकरीका कोई निश्चय हुआ था न रहनेको क्वार्टर ही मिला था। गेस्टहाउसमें ठहरा हुआ मुफ्ती रोटियाँ तोड़ रहा था। इन दिनों चीनी मिलका सीजन था। अतः मनबहलावके लिये केन आफ़िस जाना शुरू कर दिया था। न मुझे अपने कार्यका पता था न बैठनेके लिये कोई स्थान नियत था। फिर भी १००-५० आदमी सलाम करने लगे थे। कुछ बेकार, नौकरी लगवा देनेकी प्रार्थना करते थे। कुछ अस्थायी नौकरीवाले स्थायी नौकरी दिला देनेकी मिन्नतें करते थे। कुछ खासे पढ़े-लिखे बाबू मुझे सर और हुज़ूर कहकर बोलने लगे थे। इन सब बातों-का परिणाम यह हुआ कि मैं अपनेको 'सर' और 'हुज़ूर' तो नहीं, पर कुछ न कुछ समझने ज़रूर लगा। किसीको नमस्तेका जवाब ज़रा-सा सिर हिलाकर, किसीको मुस्कराकर, किसीको एक हाथ उठाकर देता और किन्हीको जवाब ही न देता। स्वरमें अधिकारकी-सी बू आने लगी, चालमें गम्भीरता आ गई। तभी एक करारी चपत मुँहपर लगी।

जहाँसे ईख मिलको जाती है, मैं वहाँसे गुज़र रहा था कि एक आदमी ने दो गन्ने चूसनेके लिये उठा लिये। मैंने देखते ही कहा—"क्यों बे! तूने यह गन्ने क्यों उठाये?" उसने वे गन्ने गिरा दिये और चलता बना। मैं ८-१० क़दम ही आगे बढ़ा हूँगा कि मनने धिक्कारा—"गोयलीय! ५-७ रोज़में ही इतना परिवर्त्तन? क्या हो गया है तुझे?" तत्काल

उस आदमीको पुकारकर कहा––"अच्छा अब तो ले जा, आइन्दा ऐसी हरकत न करना।" इस आवाज़में सहृदयताकी नहीं, एक महरबानीकी-सी पुट मिली हुई थी और वोह भी अधिकारके मिश्रणके साथ।

उसने फिर वे गन्ने नहीं उठाये और बग़ैर पीछे मुड़े ही वह सीधा चला गया। मैं कुछ झेंपा-सा, कुछ क्लान्त-सा गेस्टहाउस पहुँचा तो वहाँ चपरासीने तार दिया जिसमें लिखा था––

"चिल्डरन इल, कम इमीजेटली"

दिल्ली पहुँचा तो दोनों लड़के सख़्त बीमार मिले। महीने भरकी दौड़-धूपमें एक बचा, दूसरा चलता हुआ। यह मैं जानता हूँ गन्नेसे इस घटनाका कोई सम्बन्ध नही है। तार तो इस घटनासे दो रोज़ पहले चल दिया था और बच्चे एक सप्ताह पूर्व बीमार पड़ चुके थे। पर, न जाने मेरा दिल क्यों यह कहता है कि तेरे वाक्यमें अभिमान न होता और केवल कर्त्तव्यवश तैंने ईख लेनेसे मना किया होता, तो वह भी बच जाता।

काजरकी कोठरीमें भी बेदाग़

मियाँ ऊधमसिंह कचहरीमें मुंशी है, और हमारे एक मजिस्ट्रेट मित्रके मातहत काम करते हैं। १२० रु० मासिक वेतन पाते हैं। ऐसे पेशेमें होते हुए भी, जो रिश्वतख़ोरीके लिए बदनाम है बल्कि जिसमें रिश्वत लेना और देना नियम-सा बन गया है, मियाँ ऊधमसिंहकी ईमानदारी ज़िलेभरमें प्रसिद्ध है। किसीने आजतक उनको एक पैसा रिश्वत लेते नहीं सुना। इसपर तारीफ़ यह कि काममें भी ज़िलेका कोई अहलकार उनका मुक़ाबला नहीं कर सकता। एक दिन शामको अदालत समाप्त होनेपर गवाहोंको सफ़र खर्च देते समय किसी गवाहने उनका बटुआ उचका लिया। बटुवेमें दो सौके लगभग रुपये थे। यह रक़म सरकारी जुर्मानेकी वसूलीकी थी और अगले दिन सरकारी ख़ज़ानेमें जमा करानी थी। बटुवेको हरचन्द तलाश किया गया; परन्तु वह न मिलना था, और न मिला। जो आठ-दस गवाह ख़र्चा ले गए थे, बटुआ निसन्देह उन्हीं मेंसे एकने चुराया था। हमारे मजिस्ट्रेट मित्रको जब इस घटनाका पता लगा तो उन्हें यह चिन्ता हुई कि ऊधमसिंह जैसा ग़रीब आदमी इस सरकारी रक़मको जमा कैसे कर सकेगा। वह बेचारा नागहानी मुसीबत और परेशानीमें फँस जायगा। मुंशीजीके स्वाभिमानको चोट न पहुँच जाय, इस भयसे उनकी सहायता भी नहीं की जा सकती थी। आख़िर एक हल सुझा ही दिया। वहीं कचहरीमें ४-५ आफीसर्सने आपसमें अपनी जेबोंसे २०० रु० एकत्र किये और मुंशीजीको इस सहायताका आभास न मिल जाय, इस ख़यालसे ज़ाहिरामें थानेदारको बुलाकर आदेश दिया कि अपराधीकी तुरंत खोज की जाय। मियाँ ऊधम सिंहको इस आदेशका पता लगा तो हाथ बाँधकर बोले—"हुज़ूर, अपना आदेश वापिस ले लें। अपराधीकी खोज कैसे होगी? दोष तो उन आठ-दस गवाहोंमेंसे शायद एकका होगा, परन्तु पुलिस उन सबको व्यर्थमें तंग करेगी। मैं नहीं चाहता कि

मेरे कारण किसीको कष्ट पहुँचे । यह रक़म मैं अपने पाससे सरकारी ख़ज़ाने में भर दूँगा । यह रुपये मेरे भाग्यके होते तो जाते ही क्यों ?" बहुत ज़ोर देनेपर भी मियाँ ऊधमसिह पुलिसकी मार्फ़त अपराधीकी खोज करानेके लिए सहमत न हुए । केवल इसलिए २०० रु० का चुपचाप घाटा उठा लिया कि किसी निरपराध मनुष्यपर उनके कारण कहीं कुछ अत्याचार न हो जाय ।

घाटेका सौदा

हमारे एक सुपरिचित मिस्टर ज....एक बड़ी कम्पनीमें प्रधान व्यवस्थापकके प्रतिष्ठित पदपर आसीन है। अत्यन्त कर्तव्यशील, कार्यदक्ष और सज्जन पुरुष हैं। बड़े ठाटसे रहते हैं। पिछले दिनों उनके घरमें चोरी हो गई। जेवर, नक़द, सब कुछ जाता रहा। अनुमानतः ३० हज़ारका धक्का लगा। उनकी कम्पनीके मालिकको जब इस चोरीका पता लगा तो उसने उन्हें बुलाकर सब वृत्तान्त पूछा। मालिक इनके कामसे हर प्रकारसे प्रसन्न और सन्तुष्ट था। इस भारी नुकसानको सहन करना इनके लिए अत्यन्त कठिन होगा यह सोचकर मालिकने ३०,०००रु० का चेक काटकर इनके हाथमें थमा दिया और कहा—"मिस्टर ज.... तुम्हारा नुकसान मैं अपना नुकसान समझता हूँ। हानिकी पूर्ति स्वरूप यह भेंट तुम मेरी ओरसे स्वीकार करो।" मिस्टर ज....ने चेक लौटाते हुए अतीव विनम्रतासे कहा—"श्रीमन्! मैं आपका बहुत आभारी हूँ। चेक जो लौटा रहा हूँ इसे आप मेरी धृष्टता न समझें। मैं जानता हूँ कि इस भारी नुकसानको आसानीसे बरदाश्त करनेकी क्षमता मुझमें नहीं है, परन्तु मैं घाटेका सौदा करना नही चाहता। चेक देनेमें जो अनुग्रह और सहानुभूति आपने मेरे प्रति दर्शाई है, उसका मूल्य ३०,०००रु० से कहीं अधिक है। इस चेकको लेकर मैं उस पूँजीको परिमित करना नहीं चाहता।"

मालिक यह जवाब सुनकर दंग रह गया। इसे संयोग समझो या पुरस्कार, कुछ ही महीनोंमें मिस्टर ज....के वेतन और पदमें आशातीत तरक्क़ी हुई।

पंचायती सत्कार

दिल्लीके पहाड़ी धीरज बाजारमें एक कहार चाट बेचा करता था।

एक रोज़ ४-५ वर्षकी आयुका एक लड़का अपने घरसे दो गिन्नियाँ धेले समझकर उठा लाया। एक गिन्नी किसी फेरीवालेको देकर उससे चने लिये और दूसरी गिन्नीकी इस कहारके यहाँसे चाट ली। चाटवाला उस वक़्त घर गया हुआ था। उसके ७-८ वर्षके लड़केने भी उसे धेला ही समझा। जब चाटवाला आया तो लड़का बोला—"चाचा, यह नया धेला तो हम लेंगे।"

चाटवाला गिन्नी देखकर घबराया, उसने पासके दुकानदारको बुलाकर लड़केसे सब माजरा सुना और गिन्नी उस दुकानदारके पास अमानतन रख दी ताकि वास्तविक मालिकके पास वह पहुँचा दी जाय। और गिन्नी यथास्थान भेज दी गई। मुझे जब इस घटनाका पता चला तो मैं उस ग़रीब चाटवालेकी इस ईमानदारीसे बहुत प्रभावित हुआ और मैंने यह विवरण पत्रोंमें प्रकाशित करा दिया।

पत्रोंमें छपनेके दो-तीन रोज बाद वह चाटवाला मेरे पास आया और कृतज्ञता-भरे स्वरमें बोला—"एक गिन्नीसे हुज़ूर क्या पूरा पड़ता। आपने जो मुझे इज्जत दिलाई है, उसके आगे करोड़ोंकी दौलत हेच है। अखबारोंमें यह ख़बर छपनेपर हमारी बिरादरीकी पंचायत हुई, जिसमें मुझे बुलाकर शाबाशी दी गई और कहा गया कि तैंने अपनी ज़ातकी इज्ज़त बढ़ाई है।" हुज़ूर आपकी बदौलत मेरी इतनी इज्ज़त हुई, आपका किस मुँहसे उपकार मानूँ।

मैंने कहा—"इतने ग़रीब होते हुए भी जो तुमने आदर्श उपस्थित किया है, उसे जनताके सामने रखना एक लेखकके नाते मेरा फ़र्ज़ था। तुम्हारी ईमानदारी इससे भी ज़्यादा इज्ज़त पानेकी मुस्तहक़ है।"

विमल भाई

मेरे एक अत्यन्त स्नेही साथी हैं, जिन्हें कुछ लोग 'ख़ब्ती भाई' कहते हैं, कुछ लोग उन्हें सनकी समझते हैं और कुछ समझदार दोस्तोंका फ़तवा है कि इनके म[illegible] एक पेंच ढीला है।

मेरा इनसे सन् १९२५ से परिचय है। इन २५ वर्षोंमें समीपसे समीपतर रहनेपर भी मुझे इनमें ख़ब्त और सनकका आभास तक नही मिला, फिर भी मैं हैरान हूँ कि हे सर्वज्ञ! क्या ये आपके ज्ञानमें भी ख़ब्ती और सनकी झलके हैं?

गोरा शरीर, किताबी चेहरा, आँखें बड़ीं और रसीली, चौड़ी पेशानी, मझोला क़द, सुडौल कसरती जिस्म, शरीरपर स्वच्छ और धवल खादीकी मोहक पोशाक, चाल-ढालमें मस्ती और स्फूर्ति। एफ० ए० तक शिक्षा, भले और प्रतिष्ठित घरमें जन्म, बातचीतमें आकर्षण, राष्ट्रिय विचारों और लोकसेवी भावनाओंसे ओतप्रोत। महात्मा गाँधीसे किसीका दिल दुखा हो, परन्तु इनसे असम्भव। फिर भी दोस्तोंके दायरेमें मज़हकाख़ेज़ बने हुए हैं और उसपर तुर्रा यह कि बुरा माननेके बजाय फूलकी तरह खिलते रहते हैं।

एक रोज़ मैं और एक मेरे साहित्यिक मित्र विमल भाईकी चर्चा कर रहे थे और उनपर फ़ब्तियाँ कसनेवालोंपर छींटे उड़ा रहे थे कि समीप ही बैठा हुआ उनका ११-१२ वर्षका छोटा भाई पढ़ते-पढ़ते बेसाख़्ता बोला—"हाँ–हाँ वह ख़ब्ती है, सनकी है; मैं शर्त बदकर कहता हूँ।"

अब हमारी क्या सामर्थ्य थी जो बात काटते। एक तो छोटा, दूसरे शर्त बदनेको तैयार। फिर भी हिम्मत बाँधकर पूछ ही बैठे—"हुज़ूरको उसमें क्या ख़ब्त दिखाई देता है?"

वह एक अजीब-सा मुंह बनाकर बोला—एक ख़ब्त। अजी भाई साहब! वह सरसे पैर तक ख़प्त ही ख़ब्तसे ढका हुआ है। जिस मुर्दनी-

में कुत्ते न झाँकें वहाँ इन्हें देख लीजिये। सुबह-शाम हज़रतके हाथमें ऐरे-ग़ैरे नत्थूख़ैरोंके लिए दवाओंकी शीशियाँ रहती हैं, ख़ुदके पाँवमें साबुत जूतियाँ नहीं और उस रोज दूकान बेचकर उस.....नादिहन्दको दो हज़ार रुपये दे दिये, जिससे पठान भी तोबा माँग चुके हैं। उस रोज़ स्कूलसे आते हुए यारोंने उन्हें बनानेके ख़यालसे कहा—

"बड़े भाई, आज तो ईखका रस पिलवाओ।" थोड़ी देरमें क्या देखते हैं कि हम ८-१० साथियोंके लिये ईखके रसके बजाय सन्तरेके रसके गिलास आ रहे हैं। हमने ख़िलाफ़ तवक़्क़ह देखकर पूछा—"बड़े भाई, यह क्या तकल्लुफ़ ?" फ़र्माया—"आप लोग कब बार-बार पिलानेको कहते हैं।"

"रस पी चुकनेपर हम सबकी मुश्तर्का राय थी कि विमल भाई ख़ब्ती होनेके साथ-साथ बुद्धू भी हैं"।

लड़केने अपनी बात कुछ इस ढंगसे कही कि मेरे वे साहित्यिक मित्र तपाकसे बोले—हाँ यार, इनके ख़ब्तका एक ताज़ा लतीफ़ा तो सुनो—"पुकार फिल्ममें किस क़दर रश है, यह तो तुम्हें मालूम ही है। विमल भाईने भी भीड़में घुसकर ४–५ फर्स्ट क्लास टिकट खरीद लिये। एक तो अपने लिए बाक़ीके परिचित या मुहल्लेके लोगोंके लिए, इस खयालसे कि कोई आये तो परेशान न हो। दर्शकोंकी भीड़ हालमें घुसी जा रही है और विमल हैं कि आनेवाले परिचितोंकी प्रतीक्षामें बाहर सूख रहे हैं; और जब राम-राम करके टिकटोंसे मुक्ति पाई तो हालमें तिल रखनेको जगह न थी। टिकट जिन साहबने लिये, उनमेंसे किसीने फ्री पास समझकर और किसीने बुरा न मान जाएँ, इस भयसे टिकटके दाम नहीं दिये। एक साहबने दाम देनेकी ज़हमत फ़र्माते हुए अठन्नी उनके हाथपर रखी और बोले—"जब हाउस फुल हो गया तो टिकटके पूरे दाम कैसे ?"

यह लतीफ़ा उन्होंने इस अन्दाज़में बयान किया कि हम लोट-पोट

हो गये। रातको सोने लगा तो मुझे विमल भाईकी ऐसी कई बातें स्मरण हो आई, जिन्हें मैं अब तक उनकी ख़ूबियाँ तसव्वुर किया करता था। अब जो दुनियाकी ऐनक लगाकर देखता हूँ तो रंग ही दूसरा नज़र आने लगा।

सन् १९३३ की बात है। मुझे ऐतिहासिक अनुसन्धानके लिए अकस्मात् उदयपुर जाना उसी रोज़ आवश्यक हो गया। मार्ग-व्ययके लिए तो रुपये उधार मिल गये, और ठहरने आदिकी सुविधा इतिहास-प्रेमी बलवन्तसिंहजी मेहताके यहाँ हो गई; परन्तु पहननेके कपड़े मेरे पास क़तई नहीं थे। जेलसे आकर बैठा था। जो कपड़े थे, उनमेंसे कुछ धोबीके यहाँ थे, कुछ मैले पड़े थे। स्वच्छ एक भी न था, और उदयपुर जाना उसी रोज़ अत्यन्त आवश्यक था। बड़ी असमञ्जस और चिन्तामें था कि यकायक विमल भाई आये और बोले कि—"सुना है आप उदयपुर जा रहे हैं, वहाँ आपको कई रोज़ लगेंगे। मेरे पास फालतू कपड़े तो नहीं है, परन्तु आप घरपर दिनभर रहें तो आपके सब कपड़े धो दूं।" मजबूरन विमल भाईको कपड़े देने पड़े। शामको धोकर दिये तो इतने स्वच्छ कि धोबी भी देखकर शर्माये।

गत वर्ष गर्मीके दिनोंमें आपके यहाँ चोरी हो गई। जिन बिस्तरोंपर आप आराम फ़र्मा रहे थे, उनको छोड़कर नक़द, ज़ेवर, कपड़े, बर्तन सब ले गये। लगे हाथ झाड़ू भी दे गये, ताकि सुबह उठकर सर पीटकर रोनेके अतिरिक्त आपको झाड़ू देनेकी ज़हमत न उठानी पड़े। समाचार सुना तो घबड़ाया हुआ विमल भाईके यहाँ पहुँचा। समझमें नहीं आता था कि इस महँगी और कण्ट्रोलके ज़मानेमें अब कैसे पौन दर्जन फ़ौजका तन ढकेंगे। और हवा-पानीके अलावा क्या खाने-पीनेको देंगे। सान्त्वना देनेके लिए न कोई शब्द सूझते थे, न कोई कमबख़्त शेर ही याद आता था। इसी उधेड़बुनमें मुंह लटकाये पहुँचा तो विमल भाई देखते ही खिल उठे, और मैं कुछ कहूँ, इससे पहले स्वयं ही बोले—

"भाई ! हमारा तो सदैवके संकटसे पीछा छूट गया। यक़ीनन आजसे हमारे बुरे दिन गये और अच्छे दिन आये।"

मैंने समझा कि विपदाका पहाड़ टूट पड़नेसे विक्षिप्त हो गया है। परन्तु वह विक्षिप्त नहीं था, फिर बोला—"भाई ! यह परिग्रह ही सब झगड़ोंकी जड़ है, इसीके कारण अनेक क्लेश और बाधाएँ आती हैं। अब सुख-चैन ही सुख-चैन है। रोटियाँ तो खानेको मिलेंगी ही। आधे दर्जन बच्चे हो गये, अब पत्नी ज़ेवर पहनते क्या अच्छी लगती थी ? विलायती कपड़ा सब जाता रहा, अब झक मारकर स्वदेशी पहनेगी !" और फिर वही चेहरेपर फूल-सी मुस्कराहट।

उठकर चला तो वहाँसे एक साहब साथ और हो लिये। फ़र्माया—"देखा आपने इनका ख़ब्त। लोगोंके घर चोरी होती है तो दहाड़ मारकर रोते हैं और एक आप हैं कि खिल-खिल हँस रहे है। गोया चोरी नहीं हुई, लाटरीमें हरामका रुपया हाथ लग गया है। अगर इनका बस चले तो चोरी होनेकी ख़ुशीमें दावत दे दें।"

सान्त्वना प्रकट करनेके लिए तो मुझे कोई शेर याद नहीं आया, उसकी आवश्यकता भी नही पड़ी, परन्तु इन साथीकी बकवासपर ग़ालिबका शेर मनमें झूमने लगा—

न लुटता दिनको तो यूँ रातको क्यों बेख़बर सोता।
रहा खटका न चोरीका दुआ देता हूँ रहज़नको॥

सन् ३० के असहयोग आन्दोलनमें आपने खद्दरकी दुकान खोली। विमल भाईकी दुकानपर बाहरके व्यापारी तो तब आते, जब परिचित यारोंकी कुछ कमी होती। भीड़ लग गई, लोग हैरान कि जिसने कभी दूकान नही की, वह इस फर्राटेसे क्योंकर बिक्री कर रहा है ? घरवाले भी ख़ुश कि चवन्नी न सही, दुअन्नी रुपया भी मुनाफा लिया तो २००-३०० रुपयेकी बिक्रीपर २५-३० तो कहीं भी नहीं गये। हमने स्वयं अपनी आँखोंसे आपकी दुकानदारीके जौहर देखे। दुकान ऐसी चली कि २-३ माहमें ही

पंख निकल आये। माँने अपने ३००० रु० माँगे तो आपने एक हज़ार रुपयेकी उधारकी लिस्ट दे दी और दो हजार रुपये एकके नाम ऋण लिखे दिखला दिये।

माँने सर पीटकर कहा—'तैंने उस नादिहन्दको दो हज़ार क्यों पकड़ा दिये?" फर्माया—"माँ, तू तो बेकारमें घबड़ाती है, उसने मुझे क़सम खाकर २००० रु० रुपये जल्दी लौटानेको कहा है। उसे पठान तंग कर रहे थे, इसीसे उसे रुपयेकी ज़रूरत आ पड़ी थी।"

इन २५ वर्षोंमें जब-जब विमलभाईसे पूछा कि वे रुपये पटे या नहीं। तब-तब आपने बड़े विश्वासके साथ कहा—"भई, रुपये मारमें थोड़े ही हैं! विचारा ख़ुद मुसीबतमें है, उससे रुपयेका तक़ाज़ा करना भलमनसाहतमें दाख़िल नही।"

मैं इन २५ वर्षोंमें स्वयं निर्णय नहीं कर पाया कि विमलभाई ख़ब्ती हैं या जीवन्मुक्त? क्या पाठक अपनी उपयुक्त सम्मति देंगे।

भिक्षुक मनोवृत्ति

बहुधा लोगोंके जीवनमें ऐसे अवसर आते हैं कि दिनभर भूखे-प्यासे रहनेसे पेट अँतड़ियोंसे लग गया है, जीभ तालूसे जा लगी है, ओठोंपर पपड़ियाँ जम गई हैं और चलते-चलते पाँव मूसल हो गये हैं। न पासमें एक धेला है, जो चने चबाकर ही ठण्डा पानी पिया जाय, न मंज़िले मक़सूद ही नज़र आती है। पासमें पैसे न होनेकी वजह मुफ़लिसी ही नहीं होती, आकस्मिक घटनाएँ भी होती है। कभी जेब कट जाती है, कभी घरसे लेकर न चले और साथियोंने रास्तेसे ही पकड़ लिया और समझा कि अभी वापिस आये जाते हैं, मगर रास्तेमें कार फेल हो गई या ताँगा पलट गया, पैदल चलनेके सिवा कोई चारा नहीं। कभी रेल्वे टिकिटके लिए १-२ पैसेकी कमी रह गई है। परदेशमें किससे माँगे, कोई जान-पहचानका भी तो दिखाई नहीं देता, कि इस मुसीबतसे निजात मिले। और दिखाई दिया भी तो माँगनेकी हिम्मत न हुई, ओठ काँपकर रह गये। घरमें बच्चा बीमार पड़ा है, उसी रोज़ वेतन मिलनेवाला है, मगर घरमें डाक्टरको बुलानेके लिए रुपये फ़ीसको तो कुजा, आफ़िस जानेके लिए इक्केके लिए दो पैसे भी नहीं हैं। और मनमें यह सोच ही रहे है कि चलो बच्चेको ही हस्पताल गोदमें ले चला जाये, ऐसे ही नाज़ुक मौक़ेपर कोई साहब आते है। शक्लोशबाहतसे अच्छे-ख़ासे ज़ीविक़ार और भले मालूम देते हैं। हाथमें ४-५ रुपयेकी रेज़गारी भी लिये हुए हैं। कुम्भ-स्नानको जाना है, एक-दो रुपयेकी जो कमी रह गई है, उसे पूरी करने चले आये हैं और इनकी धज देखिये——नाज मुद्दतसे छोड़ रक्खा है, सिर्फ़ फल-दूधपर गुज़र फ़र्माते हैं, ऐसे संयमीकी सहायता करना आवश्यक है। भांजीके भातमें २००० रु० की कसर रह गई है, ऐसे कारेसवाबमें मदद करना अख़लाकी फ़र्ज़ है। अफ़ीम खानेको पैसे नहीं रहे हैं, अफ़ीम न मिली तो बिचारा जम्हाइयाँ लेते-लेते मर जायगा, इन्सानी जान बचाना निहायत

ज़रूरी है। ऐसे दुखद प्रसंगोंपर बड़ी विचित्र परिस्थिति होती है। ख़ास-कर उस अवसरपर जब कि आप, ख़ुद सही मायनोंमें इम्दादके मुस्तहक हैं, मगर अपनी वज़हदारीकी वजहसे आप किसीपर भी यह राज़ ज़ाहिर नहीं करना चाहते और तभी कोई आपके जाने-पहचाने साहब—किसी जल्सेके लिए, चौबेको भरपेट लड्डू खिलानेके लिए, किसी साधुके मन्दिर-का कुँआ बनवानेकी हठ पूरी करनेके लिए, चिड़ीमारके चंगुलसे तोते छुड़ाने-के लिए, मुहल्लेमें साँग करानेके लिए, कलकत्ते-बम्बईमें चलनेवाली मज़-दूर हड़तालके लिए, देवीका परसाद बाँटनेके लिए, क़साईके हाथसे लँगड़ी गाय छुड़ानेके लिए—चन्दा माँगने आ जाते हैं। तब कैसी दयनीय परिस्थिति हो जाती है, ना करनेकी हिम्मत नही; देनेको कानी कौड़ी नही। कभी दिल चाहता है, दीवारसे टकराकर अपना सर फोड़ लें, कभी जी चाहता है, इन माँगनेवालोंपर टूट पड़ें और जो ये लाये हैं, उसे छीनकर अपना काम चलाएँ। मगर कुछ नहीं बन पड़ता और एक निरीह, ख़ुद-ग़रज़, अहंकारी, रूक्षस्वभावी न जाने क्या-क्या लोगोंकी नज़रोंमें बनकर रह जाते हैं। कुछ आप बीती अर्ज़ करता हूँ:—

सन् ३२ की दिवाली आई और चली गई, न हमारे घरमें चिराग जले न मिठाई आई। इस बातसे हमारे चेहरेपर न शिकन आई, न दिलमें कोई मलाल, बल्कि हक़ीक़ी मायनोंमें हमें अपनी इस बेबसीपर नाज़ था। क्योंकि यह मुसीबत दैवकी तरफ़से नहीं, हमने ख़ुद ही बुलाई थी। दीवाली से दो-तीन रोज़ बाद माँने कहा—"बेटा! मुझे तुझसे कहना याद नही रहा, एक आदमी १०-१२ चक्कर लगा चुका है, न नाम बताता है, न काम, न तेरे मिलनेके वक़्तपर आता है, यूँ कई चक्कर काट चुका।" माँ अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि बोली—"देख, वही शायद फिर आवाज़ दे रहा है।"

बाहर आकर उनका परिचय पूछूँ कि वे स्वयं ही बोले—

"आप ही गोयलीयजी हैं।"

"जी, मुझी ख़ाकसारको गोयलीय कहते हैं।"

"वाह साहब ! आप भी ख़ूब है; पचासों चक्कर लगा डाले, तब आप मिले हैं।"

मैं हैरान कि ख़ामाख़ां भाड़ पिलानेवाले यह साहब आख़िर है कौन ? पुलिसवाले यह हो नही सकते, उनकी इतनी हिम्मत भी नही कि इस तरह पेश आयें, कोई क़र्ज़ माँगनेवाला भी नहीं हो सकता क्योंकि यहाँ यह आलम रहा है कि––

"घरमें भूका पड़ रहे दस फाके हो जाएँ।
तुलसी भैया बन्धुके कभी न माँगन जाएँ॥"

जब बाबा तुलसी, भैया-बन्धुसे माँगना वर्जित कर गये है, तब ग़ैरोंसे उधार माँगनेकी तो मै बेवक़ूफ़ी करता ही क्यों ? फिर भी मैंने बड़ी आज़िज़ीसे न मिलनेका अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए उनसे ग़रीबख़ानेपर तशरीफ़-आवरीका सबब पूछा तो मालूम हुआ कि मेरे साथ जो जेलमे एक वालिण्टियर १-२ माह रहा था, ये उनके भाई हैं। उनकी तन्दुरुस्ती ठीक न होनेकी वजहसे वे शिमले जाना चाहते है। लिहाज़ा मुझे उनके पहाड़ी अख़राजात-के माक़ूल इन्तज़ामात कर देने चाहिएँ।

मै तो सुनकर सन्न रह गया। पहले तो यही बड़ी मुश्किलसे समझ में आया कि ये आख़िर ज़िक्र किन साहबका कर रहे है। यह जान-पहचान ठीक इसी तरहकी थी जैसे कोई कहार देहलीसे डोली ख़रीदकर ले जाएँ और लोगोंसे कहें कि पं० नेहरू रिश्तेमें हमारे साढ़ होते है, और कुरेदकर पूछने पर बताएँ कि "जिस शहरसे पण्डितजी कमला नेहरूका डोला लाये थे, वहींसे हम भी डोली लाये हैं।"

मुझे उसकी इस दीदादिलेरी, बेतकल्लुफ़ी, भीखके टूक और बाज़ार-में डकारवाली शानपर ताव तो बहुत आया, मगर घरपर आया जानकर बल खाकर रह गया और निहायत आज़िज़ीसे मजबूरी ज़ाहिर की,

न चाहते हुए भी मुफ़लिसीकी रेखा खींची। मगर उसको यक़ीन न आया। "लोग बड़े ख़ुदग़रज़ है, ख़ुद गुलछर्रे उड़ाते हैं, मगर दूसरोंको छटपटाते देखकर भी नहीं सिहरते।" इसी तरहके भाव व्यक्त करते हुए वे चले गये और मै अपनी इस बेबसीपर नादिम-सा होकर गड़ा-सा रह गया कि एक वो है जो स्वास्थ्य सुधारने पहाड़ जा रहे है और एक हम है कि दम उखाड़नेवाली खांसीके लिये मुलैठी-सत भी नहीं जुटा पा रहे हैं।

कुछ घटनाएँ विरोधी भी अर्ज़ करता हूँ–

१९३३ या ३४ की बात है। जमुनामें बाढ़ आ जानेसे निकटवर्ती गाँव बड़ी विपदामें आ गये थे। उन्हें भोजन, वस्त्र, दवा आदिकी अविलम्ब आवश्यकता थी। दिल्लीवाले प्राणपणसे सहायता पहुँचा रहे थे। हमारे इलाक़ेसे भी हज़ारों रुपये एकत्र हुए। हम एक कारमें आवश्यक सामान रखकर नहरके रास्तेमें पड़नेवाले गाँवोंमें गये। वहाँ दवाएँ, वस्त्र आदि बाँटते हुए एक ऐसे गाँवमें गये, जहाँ वर्षासे बहुत हानि नही हुई थी और बादमें मालूम हुआ कि यह ब्राह्मणोंका गाँव था। वहाँ गाँववालोंकी सलाह से यह तय हुआ कि पूरे गाँवके लिए कमसे कम एक सप्ताहके भोजनका प्रबन्ध फ़ौरन कर देना चाहिए और जबतक स्थिति पूर्व जैसी न हो जाय, बराबर साप्ताहिक सहायता आती रहनी चाहिए। जन-लेखाका हिसाब लगाया गया तो ८० मन गेहूँ फ़ी हफ़्ते बैठता था। गाड़ी यहाँ आकर अटकी कि ८० मन गेहूँ दिल्लीसे क्योंकर लाया जाय? कारके आने-जाने को ही बमुश्किल नहर विभागसे आज्ञा मिली है। इस ख़तरेमें ट्रक या लारी तो किसी हालतमें भी नहीं आ सकती।

हम लोगोंको चिन्तामें पड़े देख, गाँववाले बोले–"दिल्लीसे गेहूँ लानेकी क्या ज़रूरत है। हमारे यहाँ सबके पास गेहूँ भरा पड़ा है, दाम देकर चाहे जितना ख़रीद लो।"

हमारी हैरानीकी हद न रही, हमने कहा--"अरे भई ! जब तुम्हारे पास ग़ल्ला भरा पड़ा है, तब तुम नाहक़ हमसे क्यों लेना चाहते हो ?"

वे बोले--"वाह साहब, आप जब इतनी दूर चलकर देने आये हैं, तब हम क्यों न लें, आप भी अपने मनमें क्या कहेंगे कि ब्राह्मण होकर दान लेनेसे इन्कार किया।" हमने अपनी हँसी और आवेशको रोककर कहा--"भई, हम इस वक्त खैरात करने नहीं आये, अपने भाइयोंकी मदद करने आये हैं। मुसीबतमें इन्सान ही इन्सानके काम आता है। हम दे रहे हैं, इसीसे दाता नही, और जो ज़रूरतमन्द ले रहे है, वह माँगते नहीं। यह तो सब मिलकर मुसीबतमें एक दूसरेका हाथ बटा रहे हैं। इसीलिए गाँवमें जो सचमुच इमदादके योग्य हो उसे बुला दो, जो हमसे उसकी सहायता बन सकेगी करेंगे।"

गाँववालोंने जिस बुढ़ियाका नाम बताया, उसने मिन्नतें करनेपर भी कुछ नहीं लिया। तब वे गाँववाले स्वयं ही बोले--"आप नाहक़ परेशान होते हैं। इमदाद लेगा तो सारा गाँव लेगा, वर्ना कोई न लेगा। अगर आप हमें न देकर, सिर्फ़ १-२ को देकर चले जाएँगे, तो सारा गाँव इन्हें हलका समझेगा, ताना मारेगा, इसी डरसे ये लोग नहीं लेते हैं और न लेंगे।"

बड़ा जी खराब हुआ, जिन्हें सचमुच सहायताकी ज़रूरत थी, उन्हें भी सहायता न दी जा सकी। लाचार कारमें बैठकर नहरकी पटरी-पटरी दिल्लीकी ओर वापिस जा रहे थे कि नहरके किनारे कुछ लोग औरतों-बच्चों समेत दिखाई दिये तो कार रुकवा ली। पूछनेपर मालूम हुआ कि गाँवमें पानी आ जानेसे यह लोग यहाँ आ गये हैं और ज़्यादातर किसान जाट हैं।

हमने जब इमदाद देनेकी बात उठाई तो वे लोग बातको टाल गये, दुबारा कहा तो ऐसे चुप हो गये जैसे कुछ सुना ही नहीं। फिर तनिक

ज़ोर देकर कहा तो बोले—"आपकी मेहरबानी, हमें किसी चीज़की दरकार नहीं, भगवान्का दिया सब कुछ है।"

उस गाँवकी भिक्षुक मनोवृत्ति देखकर हम जो गाँववालोंके प्रति अपनी राय क़ायम कर चुके थे, वह उड़ती नज़र आई तो हमने अपनी दानवीरताके बड़प्पनके स्वरमें तनिक मधुरता घोलते हुए कहा—"संकोच की कोई बात नहीं, तुम्हारा जब सब उजड़ गया है, तो यह सामान लेनेमें उज्र किस बातका? यह तो लाये ही आप लोगोंके लिए है।"

हमारी बात उन्हें अच्छी नहीं लगी, शिष्टाचारके नाते उन्होंने कहा तो शायद कुछ नहीं, फिर भी उनके मनोभाव हमसे छिपे नहीं रहे। उन्होंने मौन रहकर ही हमपर प्रकट कर दिया कि जो स्वयं अन्नदाता हैं, वे हाथ क्या पसारेंगे? फिर भी हमारे मन रखनेको उनमेंसे एक बूढ़ा बोला—"लाला, हम सब बड़े मौजमें हैं, अगर कुछ देनेकी समाई है तो उस टीलेपर हमारे गाँवका फ़क़ीर पड़ा है, उसे जो देना चाहो दे आओ। हम सब अपनी-अपनी गुज़र-बसर कर लेंगे। उसकी इमदाद हमारे बसकी नहीं।"

आख़िर उस फ़क़ीरको ही आटा-वस्त्र देकर अपनी दानशीलताकी ख़ाज मिटाई गई। कारमें सब साथी मुँह लटकाये दिल्ली वापिस जा रहे थे, हम बड़े या ये किसान, शायद इसी समस्याको सब सुलझा रहे थे।

डालमियाँनगरमें सहारनपुरके चौ० कुलवन्तराय जैन रहते थे। ५०-५५ वर्षकी आयु होगी। ज़ीशऊर, ख़ुशपोश और बड़ी वज़ह-क़तअके बुज़ुर्ग थे। घरके आसूदा थे, मगर व्यापारमें घाटा आजानेसे यहाँ सर्विस करके दिन गुज़ार रहे थे। मामूली वेतन और मामूली पोस्टपर काम करते थे। मेरे पास अक्सर आया करते और बड़ी तजरुबेकी बातें सुनाया करते थे। निहायत ख़ुश अख़लाक, बामज़ाक, नेकचलन और क़ायदा करीनेके इन्सान थे। उनकी सुहबतमें जितना भी वक़्त सर्फ़ हुआ, पुरलुत्फ़ रहा। हर इन्सानको घरेलू परेशानियाँ और नौकरी सम्बन्धी असुविधाएँ होती हैं, मगर २-३ सालके अर्सेमें एकबार भी ज़बानपर न लाये। मिल-

क्षेत्रोंमें जहाँ बैठे बिठाये, लोगोंको उत्पात सूझते रहते हैं। इंक्रीमेण्ट (वार्षिक तरक्क़ी), बोनस (नौकरीके अतिरिक्त वार्षिक भत्ता), डेज़िगनेशन (पद) और ऑफिसर्सकी शिकायतें, इनक़लाब, मुर्दाबाद और हाय-हायके नारोंसे अच्छे-अच्छोंके आसन और मन हिल जाते हैं। वहाँ उनके चेहरेपर न कभी शिकन दिखाई दी, न ज़बानपर हर्फ़ेशिकायत।

उनका इकलौता लड़का रुड़की कॉलेजमें इञ्जीनियरिंगमें पढ़ रहा था। शायद ८०) मासिक भेजने पड़ते थे। मैं जानता था यह उनके बूतेके बाहर है, उन्हें बमुश्किल इतना कुल वेतन मिलता था। अतः मैं समझता था कि या तो धीरे-धीरे बचे-खुचे ज़ेवर सर्फ़ हो रहे हैं या सरपर ऋण चढ़ रहा है। पूछनेकी हिम्मत भी न होती थी, पूछूँ भी किस मुँहसे ?

आख़िर एक रोज जी कड़ा करके मैंने रास्तेमें उनसे 'डालमिया, जैन छात्रवृत्ति' लेनेके लिए कह ही दिया। सुनकर शुक्रिया अदा करके मन्दिरजी चले गये। दूसरे रोज़ घरपर तशरीफ लाये और फ़र्माया––"गोयलीयजी, आप मेरे बड़े शुभचिन्तक हैं, यह मैं जानता हूँ। आपने मेरा दिल दुखानेको नहीं, बल्कि नेकनीयतीसे ही मुझे यह सलाह दी है। आपकी बात टालनेकी हिम्मत न होनेकी वजहसे, मैं उस वक़्त स्वीकारता देकर चला गया। मगर फिर घर जाकर सोचा तो, बात मनमें बैठी नहीं। एक साल रह गया है, जैसे भी होगा निकल ही जायगा। इस बुढ़ापेमें क्यों ज़रासी बातपर ख़ानदानको दाग़ लगाया जाय ? भला लड़का ही अपने मनमें क्या सोचेगा ? भाई गोयलीयजी ! मैं छात्रवृत्ति लेकर अपने बच्चेका दिल छोटा हरगिज़ नहीं करूँगा।"

चौधरी साहब इतना स्वाभिमानका उत्तर देंगे, अगर मुझे ज़रा भी शक होता तो मैं यह ज़िक्र तक न छेड़ता। मगर अब तो तीर कमानसे निकल चुका था, निशानेपर न लगे तो तीरन्दाज़की ख़ूबी क्या ? मैं तनिक अधिकारपूर्वक बोला––"चौधरी साहब, आपका साहबज़ादा फ़र्स्टक्लास फ़र्स्ट आया है, ऐसे होनहारको तो वज़ीफ़ा लेनेका पूरा हक़ है। इसमें

संकोच और एहसानकी क्या बात है? यह तो उसे बतौर इनाम मिलेगा।"

मैंने समझा वार भरपूर बैठा है और चौधरी साहब अब सीधे खड़े नही रह सकते। मगर नहीं, उन्होंने वार भी बड़ी खूबीसे काटा और मुझे पटख़ना भी ऐसा दिया कि चोट भी न लगे और हमलावरकी तारीफ़ करनेको जी भी चाहे।

फ़र्माया—"गोयलीयजी, आपका फ़र्माना बजा है, मगर बेअदबी मुआफ़, यह होनहार लड़कोंको वज़ीफ़ेके तौरपर मिलता है, तो ग़रीब-अमीर सब लड़कोंको बिना माँगे क्यों नहीं मिलता, सिर्फ़ ग़रीब लड़कोंको ही क्यों मिलता है।"

मेरे पास इसका जवाब नहीं था, क्योकि मैं जानता था कि असहाय विद्यार्थी भी उच्चसे उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें, आर्थिक अभावके कारण उनका विकास न रुक जाय, इसी सद्भावनासे प्रेरित होकर श्रीमान् साहु शान्तिप्रसादजीने छात्रवृत्ति जारी की है।

चौधरी साहब आज संसारमें नहीं हैं, मगर उनकी वज़हदारी याद आती रहती है।

पातिव्रता चिड़िया

बारह मार्च १९३० की प्रातःकालका सुहावना समय था, हम सब सी क्लासके राजनैतिक क़ैदी मौण्टगुमरी जेलमें बैठे हुए बान बट रहे थे। अनुमानतः ८ बजे होंगे कि एक चिड़ियासे एक चिड़ा अकस्मात् लड़ता हुआ देखा गया। चिड़ा उससे बलात्कार करना चाहता था, किन्तु चिड़िया जानपर खेलकर अपनेको बचा रही थी। सफलमनोरथ न होनेके कारण क्रोधावेशमें चिड़ाने चिड़ियाकी गर्दन झकझोर डाली, जिससे उसके प्राणपखेरू उड़ गये! मरनेपर चिड़िया ऊँची दीवारसे ज़मीनपर आ पड़ी। हम सब कौतूहलवश अपना काम छोड़कर उसके चारों ओर खड़े हो गये। एक-दो मिनटमें ही एक और चिड़ा वहाँ आया और हमारे पाँवोंमें पड़ी चिड़ियाको बड़ी आतुरता और बेक़रारीके साथ सूंघने लगा। वह हटायेसे भी नहीं हटता था। उसकी वह तड़प कठोरहृदयोंको भी तड़पा देनेवाली थी। मालूम होता था कि यह चिड़ा ही उस चिड़ियाका वास्तविक पति था। वह इतना शोकाकुल था कि उसे हमारा तनिक भी भय नहीं था। हम इस कौतूहल या आदर्श प्रेमको देख ही रहे थे कि जेल सुपरिण्टेण्डेण्ट और जेलर साहब भी वहाँ तशरीफ ले आये, उन्होंने सुना तो उनके नेत्र भी सजल हो आये। मरी हुई चिड़ियाको देख-देखकर चिड़ा कहीं दम न दे बैठे, इस ख़यालसे चिड़ियाको उठाकर उसकी नज़रोंसे ओझल कर दिया गया। तब वह चिड़ा और भी बेचैनीसे इधर-उधर घूमने लगा। उसके भाग्यसे चिड़ियाके दो छोटे-छोटे पर वहाँ गिर पड़े थे, अन्तमें लाचार होकर स्मृतिस्वरूप उन परोंको ही उठाकर उस घोंसलेमें ले गया, जहाँ कभी वे प्रेमसे दाम्पत्य-जीवन व्यतीत करते थे। जिस तरह वह चिड़ा तड़पता हुआ हमारे पाँवोंमें घूम रहा था, ठीक इसके विपरीत दूसरा कामातुर घातक चिड़ा दीवारपर बैठा हुआ भयभीत हुआ-सा हमारी ओर देख रहा था। मरी हुई चिड़ियाके पास आनेकी

उसकी हिम्मत नहीं होती थी। बात है भी ठीक, एक प्रेमी, जिसका हृदय प्रेमसे ओत-प्रोत है, अपने शत्रुके पास भी निःशंक चला जाता है और जिसके हृदयमें पाप है वह सब जगह भयभीत रहता है।

आत्म-विश्वास

जेलमें मलेरिया बुख़ार किसीको न आ जाय, इस ख़यालसे प्रत्येक क़ैदीको जबरन क़ुनैन मिक्स्चर पिलाया जाता था। उन दिनों विलायती दवासे मुझे परहेज़ था। अतः जब वे मेरी ओर आये, तब मैंने दवा पीनेसे क़तई इन्कार कर दिया। कुछ लिहाज़ समझिये या आत्म-विश्वास समझिये, सिपाहियोंने मुझे जबरन दवा नहीं पिलाई, किन्तु यह अवश्य कहा कि दवा न पीनेकी सूचना हमें साहब (सुपरिण्टेण्डेण्ट जेल) को अवश्य देनी होगी और फिर आपपर काफ़ी सख़्ती होगी और दवा भी पीनी होगी। सिपाहियोंकी सूचनापर साहब मेरे पास आया और दवा न पीनेका कारण पूछा। मैंने दवा पीनेमें अपनी असमर्थता प्रकट की तो बोलाः—"यदि बीमार पड़ गये तब ?" मेरे मुँहसे अनायास निकल पड़ा—"यदि बीमार हो जाऊँ तो आप कड़ीसे कड़ी सज़ा दे सकेंगे।" साहब ऑलरायट कहकर चला गया ? किन्तु सज़ाकी पूरी अवधि तक मुझे दवाकी तनिक भी आवश्यकता न पड़ी। बुख़ार, खांसी, जुकाम, क़ब्ज़ वग़ैरह मुझे कुछ भी नहीं हुआ। इतने अर्सेमें एक भी तो शिकायत नहीं हुई। जब कि अन्य साथी दो-तीन माहमें ही जेलसे बीमारियोंका पुंज बनकर जाते थे।

आकस्मिक प्रेरणा

सन् १९२५-२६ ईस्वीकी बात होगी। जाड़ोंके दिन थे। मेरे एक मित्र देहलीमें ही रहते थे। उनके यहाँ कुछ मेहमान आये हुए थे। उन सबकी इच्छा थी कि मैं भी रातको उन्हीके पास रहूँ। अतः घरपर मैं अपनी माँसे रातको न आनेके लिए कहकर चला गया और मित्रके यहाँ जागरणमें सम्मिलित हो गया, परन्तु रात्रिको दस बजेके क़रीब घर आनेके लिए एकाएक मन व्याकुल होने लगा। मित्रके यहाँ मुझे काफ़ी रोका गया और इस तरह मेरा अकस्मात् चल देना उन्हें बहुत बुरा लगने लगा। मै भी इस तरह एकाएक जानेका कोई कारण न बता सकनेकी वजहसे अत्यन्त लज्जित हो रहा था, कितु उनके बार-बार रोकनेपर भी मुझे वहाँ एक मिनट भी रहना दूभर हो गया और मैं ज़िद करके चला ही आया। घर आकर माँको दरवाज़ा खोलनेको आवाज़ दी। दरवाज़ा खुलनेपर देखता हूँ कि कमरेमें धुआँ भरा हुआ है और माँके लिहाफमें आग सुलग रही है। दौड़कर जैसे-तैसे आग बुझाई। पूछनेपर मालूम हुआ कि थोड़ी देर पहले लालटेन जलानेको माचिस जलाई थी, वही बिस्तरेपर गिर गई और धीरे-धीरे सुलगती रही। यदि दो-चार मिनटका विलम्ब और हो जाता तो माँ जलकर भस्म हो जाती। साथ ही मकानमें ऊपर तथा बराबरमें रहनेवालोंकी क्या अवस्था होती, कितनी जन-हत्या होती, कितना धन नष्ट होता, यह सब सोचते ही कलेजा धक-धक करने लगा। उस समय किस आन्तरिक शक्तिने मुझे घर आनेके लिए प्रेरित किया ? यह मेरे किसी पूर्वसंचित पुण्यका उदय ही समझना चाहिए।

इसी तरहकी आन्तरिक प्रेरणा किसी निकट सम्बन्धीके बीमार पड़नेपर बिना किसी सूचनाके मुझे सुदूरसे कितनी ही बार खीच लाई है।

सन् १९५१ में हमारे नये प्रकाशन

१. मेरे बापू

श्री हुकुमचन्द्र 'बुखारिया'

डॉ० रामकुमार वर्मा–

'मेरे बापू' में युगपुरुषको कविकी श्रद्धाञ्जलि समर्पित हुई है। इस श्रद्धाञ्जलिमें कविकी अनुभूति और कल्पनाके ऐसे प्रसून हैं जिनकी सुगन्धि निरन्तर पूजाकी पवित्रता लिए रहेगी। बापूका व्यक्तित्व ही काव्यका सहज विषय है। कवित्वके इस जागरणमें कविकी लेखनी संदेश-वाहिका बन गई है। ये संदेश शताब्दियों तक गूँजते रहेंगे। मैं कविके कंठमें अपना स्वर मिलाकर कह सकता हूँ:—

'एक बार धरती गूँजेगी ही फिर उसके अमर श्वास से'

मूल्य ढाई रुपए

२. पंच-प्रदीप

श्री शान्ति एम० ए०

आमुख लेखक सुमित्रानन्दन पन्त लिखते हैं:—शांतिजीका कवि-हृदय संस्कारतः एक स्वच्छ सुथरे कक्षके भीतर प्रतिष्ठित है, जहाँसे उनका सहज बोध भावनाके उत्थान-पतनों, सुख-दुःखके मधुर-तिक्त संवेदनों तथा बाह्य जगत्के आघातों और विक्षोभोंको एक स्वस्थ संयमन तथा आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता रहता है। कहीं भी कवयित्रीकी समर्थ भावना ऊबड़-खाबड़ धरतीकी ठोकर खाकर परास्त होती नहीं प्रतीत होती, और न वह भावोच्छ्वास मात्र बनकर वाष्पकी तरह हवामें उड़ती दिखाई देती है।

कवयित्रीकी भाषामें स्वाभाविकता, सजीवता, मधुर प्रवाह तथा शक्तिका सन्तुलित सौष्ठव है। वह अपने काव्य-निर्माणमें बच्चन तथा महादेवी जीकी झंकारोंको आत्मसात् कर उन्हें नवीन रूप प्रदान कर देती है।

मुझे विश्वास है 'पंच-प्रदीप' की शिखा भी उत्तरोत्तर उन्नत होकर उस गौरव को वहन करनेमें समर्थ होगी।"

मूल्य दो रु०

६. भारतीय विचारधारा

श्री मधुकर

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने भारतीय दर्शनको ऐतिहासिक और तुलनात्मक दृष्टिकोणसे उपस्थित करके सर्वसाधारणके लिए सुलभ बना सकनेका सराहनीय कार्य किया है। वेद, उपनिषद्, चार्वाक्, गीता, जैन और बौद्ध विचारधाराएँ, न्यायवैशेषिक, सांख्य-योग, पूर्व मीमांसा और वेदान्तके सभी दार्शनिक अंगोंकी सांगोपांग वैज्ञानिक विवेचना की गई है।

पादटिप्पणीमें दिये गये मूल संस्कृत उद्धरणोंसे पुस्तककी उपादेयता और बढ़ गई है। भारतीय संस्कृतिको स्वस्थ दृष्टिकोणसे समझनेके लिए यह पुस्तक बहुत आवश्यक है।

मूल्य दो रु०

७. महापुराण [आदिपुराण]

[भाग १]

भगवज्जिनसेनाचार्यकृत युगादि पुरुष भगवान् ऋषभदेवका पुण्य चरित्र।

इस पुराणमें न केवल चरित्र ही है किन्तु जैनाचार, जैनसंस्कार आदिका साङ्गोपाङ्ग विस्तृत विवेचन है। अनेक ताडपत्रीय प्रतियोंके आधारसे इसका संशोधन और सम्पादन साहित्याचार्य पन्नालालजीने किया है।

पृष्ठ-संख्या ७१२ बड़ा साइज **मूल्य १० रु०**

८. समयसार [अंग्रेजी]

भगवान् कुन्दकुन्दके सुप्रसिद्ध अध्यात्म ग्रन्थ समयसारका अंग्रेजी भाषामें प्रामाणिक अनुवाद। विस्तृत व्याख्या, महत्त्वपूर्ण प्रस्तावना सं०—रावबहादुर ए० चक्रवर्ती, मद्रास।

मूल्य आठ रु०

संशोधित और परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण अक्तूबर '५०में प्रकाशित

१२. शेर-ओ-शायरी

[उर्दूके सर्वोत्तम अशआर और नज़्में]

लेखक—अयोध्याप्रसाद गोयलीय

प्रस्तावना लेखक महापण्डित राहुलजी लिखते हैं—

"शेरोशायरी" के छः सौ पृष्ठोंमें गोयलीयजीने उर्दू-कविताके विकास और उसके चोटीके कवियोंका काव्य-परिचय दिया है। यह एक कविहृदय साहित्य-पारखीके आधे जीवनके परिश्रम और साधनाका फल है। हिन्दीको ऐसे ग्रन्थोंकी कितनी आवश्यकता है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।

उर्दू-कवितासे प्रथम परिचय प्राप्त करनेवालोंके लिये इन बातोंका जानना अत्यावश्यक है। गोयलीयजी जैसे उर्दू-कविताके मर्मज्ञका ही यह काम था, जो कि इतने संक्षेपमें उन्होंने उर्दू "छन्द और कविताका" चतुर्मुखीन परिचय कराया।

गोयलीयजीके संग्रहको पंक्ति-पंक्तिसे उनकी अन्तर्दृष्टि और गम्भीर अध्ययनका परिचय मिलता है। मैं तो समझता हूँ, इस विषयपर ऐसा ग्रन्थ वही लिख सकते थे।

मूल्य आठ रु०

१३. मुक्तिदूत [द्वितीय संस्करण]

श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०

"कथा अत्यन्त करुण है। लिखा भी उसे उतनी ही आस्था और आर्द्रतासे गया है। इसकी भाषा और वर्णनका वैभव मुग्ध कर देता है। इतना सचित्र और मनोरम वर्णन हिन्दीमें मैंने अन्यत्र देखा है, ऐसा याद नहीं पड़ता। मोतियोंकी लड़ीसे वाक्य जहाँ-तहाँ मिलते हैं। मन उनकी मोहकता और कोमलतापर गल-सा आता है। प्रसादजीके बाद यह शोभा और श्री, गद्यमें मैंने वीरेन्द्रमें ही पाई। मृदुता और ऋजुता बल्कि चाहे कुछ विशेष ही हो।"

—जैनेन्द्रकुमार

मूल्य पाँच रु०

१९५० में प्रकाशित

१४. केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि

सम्पादक—नेमिचन्द्र जैन, ज्यौतिषाचार्य

प्रश्नशास्त्रका अद्भुत ग्रन्थ, हिन्दी विवेचन, मुहूर्त, कुण्डली, शकुन आदिके हिन्दी परिशिष्टोंसे विभूपित।

प्रस्तुत ग्रन्थमें भारतके सभी चन्द्रोन्मीलन, केरल, प्रश्नकुतूहल आदि प्रश्नशास्त्रोंके तुलनात्मक विवेचनके साथ ही साथ ४० पृष्ठोंकी भूमिकामें जैन ज्योतिषकी विशेषता समझाई गई है। सामान्य पाठक भी इसके द्वारा अपने भावी इष्टानिष्टका परिज्ञान कर सकता है।

मूल्य चार रुपये

१५. नाममाला [संस्कृत]

सम्पादक—पं० शम्भुनाथ त्रिपाठी, सप्ततीर्थ

महाकवि धनञ्जय कृत नाममाला और अनेकार्थनाममालाका अमरकीर्तिकृत भाष्यसहित सुन्दर संस्करण। साथमें अनेकार्थनिघण्टु तथा एकाक्षरी कोश भी सम्मिलित हैं।

प्रत्येक शब्दकी सप्रमाण व्युत्पत्ति देखिए।

मूल्य साढ़े तीन रुपए

१६. सभाष्यरत्नमञ्जूषा [संस्कृत]

सूत्रशैलीमें लिखा गया एकमात्र जैन छन्दशास्त्रका ग्रंथ।

सम्पादक—छन्दशास्त्रके मर्मज्ञ, प्रो० एच० डी० वेलणकर, मुम्बई।

मूल्य दो रुपये